वर्ष : ४
अंक : २२

जनवरी-फरवरी १९९४

द्विमासिक

सदैव सम और प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है ।

वर्ष : ४
अंक : २२
जनवरी-फरवरी १९९४
तंत्री : के. आर. पटेल

शुल्क वार्षिक : रू. २५/-
आजीवन : रू. २५०/-
परदेश में वार्षिक : US$ १५ (डॉलर)
आजीवन : US$ १५० (डॉलर)

कार्यालय :
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५.
फोन : ४८६३१०, ४८६७०२

परदेश में शुल्क भरने का पता :
International Yoga Vedanta Seva Samiti
8 Williams Crest,
Park Ridge, N. J. 07656 U.S.A.
Phone (201) - 930 - 9195

टाईपसेटींग : पूजा लेसर पॉईन्ट

प्रकाशक और मुद्रक : श्री के. आर. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती,
अहमदाबाद-३८० ००५ ने
भार्गवी प्रिन्टर्स, राणीप, अहमदाबाद में
छपाकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

'ऋषि प्रसाद' हर दो महीने में ९ वीं तारीख को प्रकाशित होता है।

कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

ओ मतवाले ! ! !

आ जा आ जा ओ मतवाले ।
छलक-छलकते पी ले प्याले ॥

इधर-उधर क्यों भटक रहा है ?
सर क्यों अपना पटक रहा है ?
जनम-जनम के फंद मिटा दूँ,
जिसमें यह जीव अटक रहा है ।

मुझसे केवल आँख मिला ले ।
आ जा आ जा ओ मतवाले ॥

यह वह मदिरालय है प्यारे,
सब का बेड़ा पार उतारे ।
यह महफिल है मस्तानों की,
बूँद अगर तू कंठ उतारे ।

गगन जमीं को संग उड़ा ले ।
आ जा आ जा ओ मतवाले ॥

यह दुनिया दे-देकर क्या देगी ?
तेरा अपना भी ले लेगी ।
डँसती नागिन यह जहरीली,
कैसे तेरी जान बचेगी ?

हरि ॐ हरि ॐ बीन बजा ले ।
आ जा आ जा ओ मतवाले ॥

मरकर उससे मिलना कैसा ?
यों मुरझाकर खिलना कैसा ?
जीते जी मैं दरस करा दूँ ?
बैठ जरा यों उठना कैसा ?

सूरज-चंदा देख उजाले ।
आ जा आ जा ओ मतवाले ॥

- जगदीश मेहता
'ॐ शिवकृपा', C/20, रामनगर (कालवी बीड़)
भावनगर (गुजरात)

भवपार पा गया हूँ...

गुरुदेव के चरणों की, पतवार पा गया हूँ ।
शंका रही न मन में, भवपार पा गया हूँ ॥

करुणाजाल लेकर, ली फाँस मन मछलियाँ ।
माया का पंक छूटा, जलधार पा गया हूँ ॥

अज्ञानबधिक ने, फाँसी थी चित्त की चिड़िया ।
गुरु ने छुड़ा दिया है, उद्धार पा गया हूँ ॥

कामादि खल लुटेरों ने, ली लूट शांति-संपत्ति ।
पारस दिया गुरु ने, सुख सार पा गया हूँ ॥

संसार के मेले में, निज घर को भूला बैठा ।
देती है जो सहारा, सरकार पा गया हूँ ॥

चला साधना के पथ पर, गुरु आज्ञा में बँधकर ।
दिल में जो छिपा था, दिलदार पा गया हूँ ॥

गुरुदेव के चरणों की, पतवार पा गया हूँ ।
शंका रही न मन में, भवपार पा गया हूँ ॥

जय होवे गुरुदेव तुम्हारी ।
रक्षा करो हम शरण तिहारी ॥

- शान्तिदेव कानूनगो
वरूड़, जिला अमरावती (महाराष्ट्र)

प.पू.संत श्री आसारामजी बापू का

गीता-भागवत सत्संग समारोह

अहमदाबाद दि. २२-११-९३

''जीवात्मा ईश्वर से अलग रहकर ईश्वर को देखने की कोशिश करती है जिससे जीव और ईश्वर के बीच माया आ जाती है। परमात्मा का शुद्ध स्वरूप नहीं दिख पाता। जो ईश्वर की शरण में रहकर ईश्वर को पहचानने का यत्न करता है उसे परमात्मा का साक्षात्कार सुगमता से हो जाता है।''

विश्वविख्यात, जीवन्मुक्त, तत्त्ववेत्ता आसारामजी बापू ने आज विराट सत्संग सभा में तात्त्विक वाणी में आगे कहा :

''नमक की पुतली सागर से अलग रहकर सागर की गहराई पाना चाहे तो यह संभव नहीं है और सागर में गहरी उतरने जाये तो जलरूप हो जाती है। ऐसे ही जीवात्मा अलग रहकर ईश्वर को नहीं जान सकती और ईश्वर में यदि गहरी उतरे तो जीवात्मा स्वयं बचती ही नहीं, ब्रह्मरूप हो जाती है।

जीने की, जानने की, पाने की, आनंद का उपभोग करने की वासना के कारण ही मनुष्य ईश्वर से अलग रह जाता है।

यदि वह ईश्वर के साथ एक हो जाये तो उसे भय, चिन्ता, दुःख ढूँढने पर भी नहीं मिलेंगे।

भगवत-साक्षात्कार होने के बाद कोई बड़ा सुख तुम्हें प्रभावित न कर सकेगा, न दुःख दुःखी कर सकेगा।''

जीवन्मुक्त संत श्री आसारामजी बापू ने कहा :

''अलग-अलग तत्त्वों की साधनाओं से तुम्हें उस-उस तत्त्व पर सिद्धि मिल सकती है, परन्तु जो ब्रह्म परमात्म-तत्त्व में विश्रान्ति पाये हुए महापुरुष हैं उनके आगे सिद्ध, मुनि, गंधर्व, विद्याधर सभी नतमस्तक रहते हैं।

ऐहिक विद्या की अपेक्षा योगविद्या अधिक प्रभावशाली और फलदायी है, परन्तु इस योगविद्या की अपेक्षा भी आत्मविद्या अधिक महत्त्वपूर्ण है। उसमें स्थित हुआ पुरुष पुनः संसारचक्र में नहीं पड़ता। जन्म-मृत्यु से मुक्त हो जाता है। सूर्य-चंद्र, आकाश-पाताल आदि सब उसके अनुभव के आगे क्षुद्र लगते हैं। यह आत्मविद्या बहुत ही कठिन, दुष्प्राप्य और दुर्लभ है परन्तु यदि सत्शिष्य को सद्गुरु मिल जायें तो वह अनुभव सुलभ है।

हनुमानजी ने भगवान राम की ऐसी सेवा की कि हनुमानजी को भगवान राम ने आत्म-साक्षात्कार करवाया। अब श्रीरामजी के मंदिर में हनुमानजी की मूर्ति अवश्य होती ही है, हनुमानजी के अलग-से मंदिर भी कई हैं। स्वामी की तुलना में भी सेवक की प्रतिष्ठा ज्यादा है। 'राम-लक्ष्मण-जानकी, जय बोलो हनुमान की... ऐसा कहा जाता है।

सेवा के बिना जो वाहवाही मिलती है, वह अंधकार बढ़ाती है। सेवाकार्य के बाद यदि फल मिलता है तो वह अन्तर में पचता है।

चौदह-सौ वर्ष के चाँगदेव १४ बार मृत्यु को पीछे ढकेल चुके थे। उन्हें भी २२ वर्ष के गुरु ज्ञानेश्वर महाराज के चरणों में जाकर आत्मज्ञान प्राप्त करना पड़ा।

जीने की, जानने की, पाने की, आनंद का उपभोग करने की वासना के कारण ही मनुष्य ईश्वर से अलग रह जाता है।

जिसे अंतर्यामी परमात्मा के सुख का अनुभव नहीं है उसे संसार के विषयों की जाल में फँसना पड़ता है। जब तक सद्गुरु विवेकपूर्ण बुद्धि का उदय कराकर वासना के आवरण को न कटवायें तब तक जीवन का लक्ष्य पूरा नहीं होता।

कोई दानी हो तो उसे दान के बदले में मान दो, इसकी अपेक्षा ज्ञान देना यह उस पर बड़ा उपकार है। उसकी अपेक्षा भी उसे साधना बतायें, साध्य-तत्त्व का चसका लगायें और ऊँगली पकड़कर साधना के मार्ग पर चलाकर, साध्य-तत्त्व का साक्षात्कार

करायें ऐसे संत - सद्गुरु की प्राप्ति होना यह बड़ी उपलब्धि है ।

कुम्हार का घड़ा कोठार में रखने के बाद, एक वर्ष पश्चात् वैसे का वैसा मिल सके यह संभव है किन्तु ब्रह्माजी का घड़ा (मनुष्य) वर्ष भर के बाद, फिर वापस मिलेगा कि नष्ट हो जायेगा, यह कहना संभव नहीं है ।

मनुष्य देह मिलना दुर्लभ है । और वह क्षणभंगुर भी है । ऐसे क्षणभंगुर मानव देह में परमात्मा के प्यारे संतों का मिलना उससे भी दुर्लभ है ।

संसार की वस्तु, परिस्थिति और संबंधों को बढ़ाकर खुद को महान मानने की भूल न करना । अपने को अमर आत्मा जानने की साधना कर लेना । कोई तुमको बाल, हड्डी, चमड़ी या खून कहकर बुलाये तो वह तुम्हें अच्छा न लगेगा । किन्तु तुम्हें कोई 'प्रभु का प्यारा, प्रिय आत्मन्', ऐसा संबोधन करके बुलाये तो तुम्हें वह प्रिय लगेगा क्योंकि तुम शरीर नहीं, नित्य शुद्ध बुद्ध आत्मा हो ।

शिष्य की तत्परता और महापुरुष की ऊँचाई जितनी होती है उतना आत्म-साक्षात्कार का कार्य जल्दी से पूर्ण होता है । जनक को घोड़े के पेंगड़े में पैर डालते डालते आत्म-साक्षात्कार हुआ था । परीक्षित को सात दिन में हुआ था ।''

पूज्यपाद बापू ने कहा :

''जगत में सुख-दुःख, निंदा-स्तुति कुछ भी तुम्हें स्पर्श कर सके, ऐसा नहीं है । तुम परमात्मा की भेजी हुई परिस्थिति की समीक्षा करने की दृष्टि का विकास करो । फिर चाहे जैसे प्रसंगों में भी परमात्मा की कृपा और प्रेरणा का अनुभव होगा ।

जो व्यक्ति जितना सरल और सहज होगा, उतना ही महान होगा । 'लोग क्या कहेंगे ? कोई क्या मानेगा ?' ऐसा विचार कर जो जिये वह तो मरते-मरते जीता है । शास्त्रों की दृष्टि से अपनी समीक्षा करना । लड़ाई-झगड़े और वैर के प्रसंगों में दूसरों को ठीक करने की अपेक्षा खुद को ही ठीक करना ताकि कोई तुम्हारा कुछ बिगाड़ न सके ।''

शिष्य की तत्परता और महापुरुष की ऊँचाई जितनी होती है उतना आत्म-साक्षात्कार का कार्य जल्दी से पूर्ण होता है ।

पूज्य बापू ने कहा :

''पितरों की आराधना से वंश-परम्परा आगे बढ़ती है । देवताओं की आराधना से इन्द्रियों में बल बढ़ता है । भगवान राम, कृष्ण और शिव की आराधना से मानसिक बल की वृद्धि होती है । सांख्य के विचार से बौद्धिक बल बढ़ता है । किन्तु ईश्वर के समग्र रूप को जानने के लिए वेदांत-विचार ही एकमात्र उपाय है ।

दुश्चरित्र की निवृत्ति के लिए धर्म है, वासना की निवृत्ति के लिए उपासना है, राग-द्वेष की निवृत्ति के लिए ईश्वर की शरणागति जरूरी है । लेकिन अज्ञान की निवृत्ति के लिए तो ज्ञान ही एकमात्र साधन है ।

दुर्जन दुष्ट स्वभाव के कारण दुःखी है, सज्जन डरपोक स्वभाव के कारण दुःखी है । भगवान कृष्ण कहते हैं कि **'अभयं सत्त्वसंशुद्धिः ।'** अपने जीवन में निर्भयता लाओ । हार जाने की, डर कर भागने की, पलायनवादिता लाने की जरूरत नहीं है, वरन् श्रीकृष्ण के ज्ञान को जीवन में उतारने की जरूरत है ।''

दुश्चरित्र की निवृत्ति के लिए धर्म है, वासना की निवृत्ति के लिए उपासना है, लेकिन अज्ञान की निवृत्ति के लिए तो ज्ञान ही एकमात्र साधन है ।

अहमदाबाद में ड्राइव-इन रोड़ पर का मैदान आज तो तीर्थस्थल बन चुका था । अहमदाबाद के कोने-कोने से श्रद्धालु लोग उमड़ पड़े थे । दो लाख लोग बैठ सकें ऐसा विशाल मण्डप भी छोटा पड़ गया था । श्रद्धालु-जन मण्डप के बाहर बैठकर भी अलख के औलिया, निराले संतपुरुष की वाणी और पापनाशक हरिनाम के कीर्तन में सराबोर होकर झूम उठे थे ।

गीता-अमृत

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

'कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता है । निःसन्देह सब मनुष्य प्रकृति से उत्पन्न हुए गुणों द्वारा परवश हुए कर्म करते हैं ।'

(भगवदगीता : ३.५)

कोई ऐसा कहे कि मैं जो कुछ करता हूँ वह अच्छा ही करता हूँ और आज तक मुझसे खराब कुछ भी हुआ ही नहीं तो यह बात संभव नहीं है । जब तक कर्म करनेवाले में कर्त्तापने का भाव है, तब तक प्रकृति के गुणों के आधीन मिश्रित कर्म ही होंगे । कर्त्ता की प्रकृत्ति सात्त्विक हो तो अच्छे कर्मों का प्रमाण ज्यादा होगा और खराब कर्मों का प्रमाण कम होगा । कर्त्ता की प्रकृति यदि तामसी हो तो खराब कर्मों का प्रमाण ज्यादा होगा और अच्छे कर्मों का प्रमाण नहीं जितना होगा । जब तक कर्म करने वाले में कर्त्ता-भाव है, तब तक कर्म के फल की अपेक्षा होगी और उसके कारण सुख-दुःख भी होगा । पुण्यात्मा इसलिए दुःखी होता है कि सब पुण्यमय कर्म नहीं कर सकता और पापी इसलिए दुःखी होता है कि सब पापवासना पूरी नहीं कर सकता ।

जुनेदमियाँ मृत्युशैया पर पड़े । आखिरी समय में मुल्ला-मौलवियों को बुलाया और कहा : ''आपकी हाजरी में मैं खुदाताला से माफी माँगता हूँ । हे खुदाताला ! मुझे माफ कर देना । मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन न कर सका । तुम्हारे कहे अनुसार न चल सका । परन्तु मैं जैसा हूँ वैसा तुम्हारी शरण में हूँ । मुझे दोजख (नर्क) से बचाना और बिस्त (स्वर्ग) में ले जाना । हे खुदा ! मैं तुम्हारा हूँ ।''

थोड़ी देर के बाद वह पुनः कहने लगा : ''हे शैतान ! तू मुझे माफ कर देना क्योंकि मैं तुम्हारी बात भी पूरी न मान सका । तुम्हारे कहे अनुसार न चल सका । मैं जैसा भी हूँ पर तुम्हारा ही हूँ ।''

मुल्ला बोला : ''यह क्या बक-वास कर रहे हो ? थोड़ी देर में खुदा से कहते हो कि तेरा हूँ फिर वापस शैतान से कहते हो कि तेरा हूँ । कुछ होश-हवास है भी या नहीं ?''

तब जुनेदमियाँ ने मुल्ला से कहा : ''मुल्ला ! बकवास तो आप करते हैं । आप ही बकवास बंद करें और दक्षिणा लेकर रवाना हो जायें । मरना मुझे है, आपको नहीं । किसको पता कि मैं कहाँ जाऊँगा ?' इसलिए दोनों ओर के मेरे संबंध को सँभाल कर रखता हूँ । जीवन में कितने अच्छे कर्म किये और कितने खराब कर्म किये ? इसका कुछ ख्याल न रखा । अब जब मरने का ही है तो आगे का ख्याल तो रखना ही पड़े न ?''

जीवन के दौरान क्या करना चाहिए और खुद क्या कर रहे हैं ? उसका कोई ख्याल ही रखता नहीं है । उलटे विचार से उलटे परिणाम और उलटे ही कर्म हुआ करते हैं । अभ्यास भी बिखरा हुआ और उलटा होता है, जिससे अच्छे कर्म नहीं सूझते । कई बार कोई अच्छा कार्य तो करते हैं परन्तु कर्त्ताभाव और अहंकार आ जाता है तो अच्छे कर्म भी खराब हो जाते हैं । यदि अहंकार रहित होकर कर्म करें तो बाहर से खराब दिखनेवाले कर्म भी अच्छे होने

लगते हैं ।

हनुमानजी ने पूरी लंका को जला डाला । उसमें कितनी ही जानहानि हुई होगी ? कितने ही लोगों का नुकसान हुआ होगा ? फिर भी हनुमानजी पूजनीय हैं और हमारे हाथ से यदि एक चींटी भी मर जाये तो पाप लगता है क्योंकि हममें कर्त्ताभाव बना रहता है । जबकि हनुमानजी सेवा में रत हैं । उनके कर्तृत्व-भोक्तृत्व भाव का विलय हो गया है । उनको तो **'राम काज बिनु कहाँ विश्रामा ।'** जो कुछ करते हैं वह राम का कार्य समझकर करते हैं । राम की सेवा समझकर करते हैं । खुद कर्त्ता होकर कार्य नहीं करते वरन् कार्य होने देते हैं । श्रीरामचन्द्रजी का कार्य हनुमानजी अकर्त्ताभाव से करते हैं । सावधानी, उत्साह और कुशलता से करते हैं । असंभव लगनेवाले कार्य को भी पुरुषार्थ करके पूरा करने में लग जाते हैं और यश-अपयश, विजय-पराजय ये सब श्रीरामजी के चरणों में रखते जाते हैं ।

जीवन के दौरान क्या करना चाहिए और खुद क्या कर रहे हैं ? उसका कोई ख्याल ही रखता नहीं है । उलटे विचार से उलटे परिणाम और उलटे ही कर्म हुआ करते हैं ।

आप भी राम के होकर, प्रभु के होकर कार्य करो तो कार्य में सफलता मिलेगी । शायद असफलता मिले तो भी हताशा नहीं होगी क्योंकि कर्त्ताभाव नहीं है ।

यस्य नाहंकृतो भावो
बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि सः इमाँल्लोकान्
न हन्ति न निबध्यते ॥

'जिसको कर्म करने में अहंकार नहीं है और जिसकी बुद्धि फलभोग से लिप्त नहीं होती वह इस लोक को मारकर भी मारता नहीं या उससे बद्ध नहीं होता है ।' (गीता : १८.१७)

दिन के दौरान जो अच्छे कार्य करो उन्हें सोने से पूर्व याद करके प्रभु को अर्पण कर दो कि 'हे प्रभु ! जो कुछ भी अच्छे कर्म हुए वे तुम्हारी सृष्टि में, तुम्हारी ही सत्ता और चेतना से हुए हैं । वे सब तुम्हें अर्पण करता हूँ । श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।'

यदि दिन के दौरान कुछ खराब हुआ हो तो उसका स्मरण करके प्रभु से प्रार्थना करो कि 'हे प्रभु ! मेरी वासनाओं के कारण, मेरे क्षुद्र अहंकार के कारण, खराब कर्म हुए हैं । अब दुबारा ऐसी भूल न हो वैसी सद्बुद्धि देना । अच्छा और खराब दोनों तुम्हारे चरणों में रखता हूँ क्योंकि मैं तुम्हारा हूँ । तुम्हारी भक्ति और सेवा में मेरा मन लगा रहे ऐसी कृपा करना ।'

ऐसा अभ्यास तो सब कोई कर सकते हैं । प्रभु से इस प्रकार पार्थना करके थोड़ी देर के लिए तुम्हारे श्वासोच्छ्वास को निहारो अथवा कंठकूप में तुम्हारे साकार ईष्ट को निहारने और ध्यान करने का प्रयास करो अथवा तो निर्गुण, निराकार चैतन्य के चिन्तन में तल्लीन हो जाँओ । जो कुछ करो वह एकाग्रतापूर्वक करो । कंठकूप में धारणा करते-करते तीन महीने के अभ्यास से स्वप्न में इष्ट के दर्शन हो सकते हैं । सुबह उठकर भी वहीं ध्यान करो । छः महीने ऐसा अभ्यास करने से योगीपुरुषों को जो योगनिद्रा में समाधि का सुख मिलता है वही समाधि के सुख का द्वार तुम्हारे लिए भी खुल जायेगा । यह अभ्यास की बलिहारी है ।

हनुमानजी ने पूरी लंका को जला डाला फिर भी हनुमानजी पूजनीय हैं और हमारे हाथ से यदि एक चींटी भी मर जाये तो हमें पाप लगता है क्योंकि हममें कर्त्ताभाव बना रहता है ।

दासीपुत्र के रूप में माने जानेवाले नारदजी कभी वेदव्यासजी को और कभी श्रीकृष्ण को भी सलाह देनेवाले देवर्षि नारद हो सकते हैं । छोटे में छोटा, तुच्छ कीड़ा अभ्यास के बल से मैत्रेय ऋषि हो सकता है तो तुम भी जरूर महान बन सकते हो । सत्कर्म और अभ्यास के बल से परम-पद को पा सकते हो ।

आत्मतीर्थ की महिमा

महाभारत में एक प्रसंग आता है ।

जब पांडव तीर्थयात्रा करने के लिए जाते हैं तब भगवान श्रीकृष्ण उनको सलाह देते हैं : ''तुम्हें तीर्थयात्रा करने के लिए जाना है तो भले जाओ, मैं मना नहीं करूँगा । किन्तु युद्ध में तुम्हें जो पाप लगा है, तुम्हारा मन जो मलिन हुआ है और चित्त में तुम्हें जो क्षोभ हुआ है वह तीर्थयात्रा करने से दूर होने वाला नहीं है । फिर भी मैं तुम्हें दुराग्रह करके मना नहीं करता । तुम मेरा एक तुम्बा भी तुम्हारे साथ लेते जाओ और उसे भी तीर्थों में स्नान करवाना ।''

अर्जुन और युधिष्ठिर ने भगवान की बात को मानकर तुम्बे को अपने साथ लिया । जिन-जिन तीर्थों में उन्होंने स्नान किया, उन-उन तीर्थों में उन्होंने तुम्बे को भी तीन-तीन, चार-चार बार डुबकियाँ लगवा कर स्नान करवाया ।

वे लोग जब तीर्थयात्रा करके वापस आये तब भगवान ने तुम्बा माँगा और उसका चूर्ण बनाया । भगवान ने वह चूर्ण प्रसाद के रूप में पांडवों को दिया , परन्तु सबने थूक दिया ।

भगवान ने पूछा : ''क्यों थूक डाला ?''

तब पांडवों ने कहा : ''भगवान ! यह तो कड़वा है !''

तीर्थों में स्नान करने से शरीर पवित्र होता है, परन्तु चित्त के दोष तो आत्मरूपी तीर्थ में स्नान करने से ही दूर होते हैं । आत्मरूपी तीर्थ सत्संग में मिलता है, और कहीं नहीं ।

तब भगवान ने कहा : ''तुम्बे ने इतने सारे तीर्थों में स्नान किया उसके बावजूद वह कड़वे का कड़वा ही रहा । ऐसा क्यों हुआ ? गंगा के पवित्र जल में उसने स्नान किया है, फिर भी उसका चूर्ण कड़वा क्यों लगता है ?''

पांडवों ने जवाब दिया : ''तुम्बे ने तीर्थों में बाहर से स्नान किया है । पानी बाहर से आया और स्पर्श करके गया । इस चूर्ण में तो तुम्बे की गहराई में उसका जो स्वभाव होगा वही आयेगा न ?''

तब भगवान कहते हैं : ''इसी प्रकार तीर्थों में स्नान करने से तुम्हारा शरीर पवित्र होता है यह तो ठीक है, परन्तु चित्त के दोष तो आत्मरूपी तीर्थ में स्नान करने से ही दूर होते हैं । आत्मरूपी तीर्थ सत्संग में मिलता है, और कहीं नहीं । सच्चे ब्रह्मज्ञानी संतों के सत्संग से ही आत्मसुख मिलता है । इसलिए सच्चा तीर्थ तो आत्मतीर्थ ही है ।''

वसुन्धरा पर गंगा का अवतरण हुआ । थोड़े ही दिनों में उसका अंतःकरण भारी हो गया । अतः गंगा भगवान ब्रह्माजी के पास गई और उनसे प्रार्थना की : '' लोग 'गंगे हर' कहकर मुझमें स्नान करते हैं और अपने पाप मुझमें डाल जाते हैं । वे तो पवित्र हो जाते हैं किन्तु कालांतर में उससे मेरा हृदय और मेरा चित्त दूषित हो जायेगा और मेरी दुर्गति हो जायेगी । इसलिए मुझे निष्पाप होने का कोई उपाय बताइये ।''

भगवान ब्रह्माजी ने कमंडलु में से जल लेकर तीन आचमन किये और पद्मासन लगा कर, जो आत्मा-परमात्मा तीर्थों को तीर्थत्व प्रदान करता है, उस परब्रह्म परमात्मा के ध्यान में तन्मय हो गये । एकाध मिनट के बाद भगवान ब्रह्मा ने कहा :

''हे गंगे ! लोग तुझमें 'गंगे हर' कह कर स्नान करेंगे और तुझमें पाप डालेंगे, जिससे तू दूषित तो होगी, किन्तु जब आत्म-

तीर्थ में नहाये हुए आत्म-साक्षात्कारी पुरुष तुझमें स्नान करेंगे तब तू पवित्र हो जायेगी ।''

आत्मतीर्थ की महिमा बहुत बड़ी है । युद्ध के मैदान में भगवान आत्मतीर्थ की सरिता बहाते हैं । जो ज्ञान घोर जंगल में मिलता था, उसी ज्ञान को भगवान ने अर्जुन को युद्ध के मैदान में सुनाया और वही गीता बनी । जो योग गिरि - गुफाओं में सिद्ध होता था, उसी योग को सोलह कलाधारी भगवान ने युद्ध के मैदान में सिद्ध करने की कला बतायी । जो धर्म मंदिर में या यज्ञ की वेदी पर संपन्न होता था, उसी धर्म को चालू व्यवहार में भी संपन्न किया जा सकता है, युद्ध के मैदान में भी अनुभव में लाया जा सकता है ।

''हे गंगे ! लोग तुझमें 'गंगे हर' कह कर स्नान करेंगे और तुझमें पाप डालेंगे, जिससे तू दूषित तो होगी, किन्तु जब आत्मतीर्थ में नहाये हुए आत्म-साक्षात्कारी पुरुष तुझमें स्नान करेंगे तब तू पवित्र हो जायेगी ।''

गीता सबके लिए अनुकूल और सर्वग्राही ग्रन्थ है । श्रीमद् भागवत मरने के बाद मुक्ति दिलाये ऐसा ग्रन्थ है किन्तु गीता तो जीते-जी ही मुक्ति दिलाती है । यह संसार भी एक युद्ध का मैदान ही है । यहाँ काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, मेरे-तेरे, सबके साथ लड़ना पड़ता है । अर्जुन ने तो युद्ध में थोड़े ही दिन शत्रुओं के साथ युद्ध किया परन्तु इस जमाने में तो प्रत्येक नागरिक युद्ध के मैदान में ही है । अर्जुन को गीता के उपदेश की जितनी जरूरत थी, उससे ज्यादा जरूरत आज के मानव को है ।

जर्मनी का एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक भारत आया । उसने भारत के संस्कृत के विद्वान से मिलने की इच्छा व्यक्त की । भारत सरकार ने संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान को बुलाकर उस वैज्ञानिक के साथ मुलाकात करवायी ।

संस्कृत के विद्वान ने पूछा : ''आप तो आईन्स्टीन के जमाने के हो । उनके साथ आपका परिचय है । तो फिर आपको मेरे जैसे संस्कृत के विद्वान से मिलने की इच्छा क्योंकर हुई ?''

उसके जवाब में वैज्ञानिक ने कहा : ''दूसरा विश्वयुद्ध चल रहा था । उस दौरान मेरी अनुसंधानशाला में एक भारतीय लड़की काम करती थी । मैंने उससे कहा कि ये बम-धड़ाके हमारा जीवन नष्ट कर देंगे । चलो, हम सुरक्षित जगह पर पहुँच जायें ।

तब उस लड़की ने कहा : 'आप इतने बड़े होकर बम-धड़ाके से घबराते हो ? मृत्यु से इतना ज्यादा डर क्यों है ? मृत्यु तो केवल एक बार ही मनुष्य को मारती है । किन्तु कायर बनकर घबराने से तो मनुष्य अनेक बार जीते-जी मरता रहता है । अतः आप मृत्यु का इतना अधिक भय न करें ।'

मैंने उससे पूछा : 'तुम्हें मृत्यु से डर नहीं लगता ?'

तब उसने कहा : 'मैं रोज गीता का पाठ करती हूँ । जो मरता है वह मैं नहीं और जो आत्मा मैं हूँ उसकी कभी मृत्यु नहीं होती । ऐसा गीता का ज्ञान मुझे भारत देश से मिला है ।'

मुझे हुआ कि मैं खुद को इतना बड़ा प्रसिद्ध वैज्ञानिक मानता हूँ किन्तु मेरी अपेक्षा तो इस लड़की में अद्‌भुत ज्ञान है । इसलिए मैंने गीता का अध्ययन शुरू किया और अब उपनिषदों का अध्ययन करने की इच्छा है । इसी कारण से मैं भारत आया हूँ जिससे मैं भारत के संस्कृत के विद्वान से मिलकर उनके साथ चर्चा-विचारणा करके गीता के अमृत को अच्छी तरह से आत्मसात् कर सकूँ ।''

महात्मा थोरो भी गीता के ज्ञान से प्रभावित होकर, अपना सब कुछ छोड़कर, अरण्यवास करते हुए, एकांत में कुटिया बनाकर जीवन्मुक्ति का आनंद लेते थे । उनके शिष्य इमर्सन आकर देखते कि उनके गुरु के आसपास कहीं साँप घूमते हैं तो कहीं बिच्छू, फिर भी उन्हें कुछ

(अनु. पेज २३ ऊपर)

पराभक्ति

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥

श्रीमद् भगवद्गीता के अठारहवे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं :

'सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में एकीभाव से स्थित हुआ प्रसन्नचित्तात्मा पुरुष न तो किसी वस्तु के लिए शोक करता है और न किसीकी आकांक्षा ही करता है एव सर्वभूतों में समभाव रखता हुआ मेरी पराभक्ति को प्राप्त होता है ।'

(श्रीमद् भगवद्गीता : १८.५४)

जो तत्त्वज्ञान की पराकाष्ठा है तथा जिसको प्राप्त होकर कुछ जानना बाकी नहीं रहता वही यहाँ पराभक्ति के नाम से कही गयी है । यह पराभक्ति अद्भुत चीज है । पराभक्ति की प्राप्ति यदि केवल तीन मिनट के लिए भी हो जाये तो दुबारा गर्भवास नहीं होता ।

भक्ति चार प्रकार की होती है : प्रथम भक्ति वह है जो कुलपरंपरा से मिलती है । उसे वैदिक भक्ति कहते हैं। घर में माँ भगवान के आगे दीपक रखती है, अगरबत्ती करती है, पुष्पहार आदि चढ़ाती है यह देखकर बच्चे भी वैसा ही करते हैं। माता-पिता मंदिर में जाते हैं, एकादशी आदि का व्रत रखते हैं तो बच्चे भी वैसा करने लगते हैं। यह वैदिक भक्ति है । जीवन में यदि कोई विघ्न-बाधाएँ आयी तो अपने कुलदेवता या कुल-देवी से प्रार्थना की, मनौती मानी, उपवास आदि रखा, यह सब इसी भक्ति के अन्तर्गत आता है ।

वैदिक भक्ति प्रारंभिक भक्ति है । जब इस भक्ति में आगे बढ़ने लगते हैं और सत्संगियों का, गुरुभक्तों का संग मिल जाता है तो वैदिक भक्ति गौड़ी भक्ति में परिणत हो जाती है । इसमें मनुष्य को कुछ विशेष अनुभव होने लगते हैं । इसमें भगवान केवल मंदिर में ही नहीं रह जाते, साकेत अथवा वैकुण्ठ में ही नहीं रह जाते वरन् भक्त के हृदय में भी कभी-कभी उनके प्रेमामृत का आनंद छलकने लगता है, महसूस होने लगता है ।

भगवान और गुरु के गुणानुवाद सुनते-सुनते, धीरे-धीरे गौड़ी भक्ति पुष्ट होकर अनुरागा भक्ति का रूप ले लेती है । अनुरागा भक्ति का ही दूसरा नाम है प्रेमाभक्ति । इसके आने से भगवान में एवं भगवद्प्राप्त महापुरुषों में अनुराग हो जाता है । अपने ईष्ट के प्रति भक्त का इतना प्रेम बढ़ जाता है कि फिर उसे रिश्ते-नातों की, जात-पाँत की परवाह ही नहीं रहती । जब मीरा का श्रीकृष्ण में अनुराग हो गया तब उसने रिश्तेदारों की तो क्या, पूरी दुनिया की परवाह नहीं की । रानी रत्नावती ने राज्य की परवाह नहीं की ।

अनुरागाभक्ति ही पुष्ट होते-होते पराभक्ति का रूप ले लेती है। **'मद्भक्तिं लभते पराम् ।'** पराभक्ति को 'ज्ञान की पराकाष्ठा','परमनैष्कर्म्य सिद्धि' और 'परमसिद्धि' आदि भी कहा जाता है। इसमें भगवान और भक्त दिखते तो दो हैं किन्तु उनका चित्त एक हो जाता है । जैसे एक कमरे में यदि दो दीपक जलते हों तो किस दीपक का कौन-सा प्रकाश है यह आप अलग नहीं कर सकते वैसे ही भगवान और भक्त को आप विभक्त नहीं कर सकते । दोनों एक और अभिन्न रूप हो जाते हैं। अरे, हो क्या जाते हैं, हैं ही किन्तु फर्क इतना है कि हमको इस बात का पता नहीं होता ।

पराभक्ति अद्भुत चीज है । पराभक्ति की प्राप्ति यदि केवल तीन मिनट के लिए भी हो जाये तो दुबारा गर्भवास नहीं होता ।

हम अज्ञानवश ही ऐसा कहते हैं कि भगवान प्राप्त होते हैं । वास्तव में तो भगवान कभी अप्राप्त नहीं हैं, वे तो सदा प्राप्त हैं और एक बार यदि इस बात का पूर्ण अनुभव हो जाय तो फिर इस संसार में कुछ भी प्राप्त करने योग्य या जानने योग्य बाकी नहीं रह जाता । यही पराभक्ति का वास्तविक स्वरूप है ।

इस प्रकार वैदिक भक्ति गौड़ी भक्ति में, गौड़ी

भक्ति प्रेमाभक्ति में और प्रेमाभक्ति पराभक्ति में परिणत हो जाती है। पराभक्ति की प्राप्ति होते ही जीव अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है।

भक्ति तो प्रायः सभी करते हैं। कोई धन का भक्त होता है, कोई सत्ता का भक्त होता है, कोई रूप-लावण्य का भक्त होता है किन्तु धन, सत्ता, पद-प्रतिष्ठा या रूप आदि की भक्ति मनुष्य का कल्याण नहीं कर सकती। मनुष्य का वास्तविक कल्याण तो ईश्वरभक्ति से, गुरुभक्ति से ही संभव है।

अपने ईष्ट के प्रति भक्त का इतना प्रेम बढ़ जाता है कि फिर उसे रिश्ते-नातों की, जात-पाँत की परवाह ही नहीं रहती।

जो लोग भक्ति का आश्रय नहीं लेते हैं उनको कुदरत जबरन भक्ति के रास्ते लगा देती है। जैसे बेटा यदि आज्ञाकारी नहीं है अथवा उसका स्वर्गवास जाय या माता-पिता का स्वर्गवास हो जाय, कोई बीमार हो जाय या धंधे में बुरी तरह नुकसान हो जाय, तब भी मनुष्य को संसार से वैराग्य हो जाता है और वह भक्ति के मार्ग पर चलने लगता है। मनुष्य को जब चारों ओर परेशानियाँ ही परेशानियाँ नजर आती हैं, अंधेरा ही अंधेरा नजर आता है और कोई मार्ग नहीं सूझता है तब वह अनायास भक्ति के रास्ते पर चल पड़ता है, भगवद्प्राप्त महापुरुषों के चरणों में पहुँच जाता है।

भक्ति का आधार है विश्वास। विश्वास से ही भक्ति फलती है। मनुष्य जिस किसी भी ईष्ट की या गुरु की भक्ति करता है उसके प्रति उसका पूर्ण विश्वास होना चाहिए।

एक बार कोई राजा-रानी नाव में बैठकर कहीं जा रहे थे। बीच मझधार में आते ही तूफान के कारण नाव डगमगाने लगी। रानी को डर लगने लगा। उसने राजा से पूछा : ''आपको डर नहीं लगता ?''

राजा ने प्रत्युत्तर में म्यान से तलवार निकाल कर रानी के गले पर रख दी। रानी हँसने लगी। तब राजा ने पूछा : ''तुम्हें डर नहीं लगता ?''

रानी ने कहा : ''मेरे स्वामी के हाथ में तलवार है तो मैं क्यों डरूँ ?''

राजा बोला : ''जैसे मेरे हाथ में तलवार होने पर तुम्हें भय नहीं लगता वैसे ही मेरा जीवन मेरे स्वामी के हाथ में है, परमात्मा के हाथ में है। यह तूफ़ान भी उसीके हाथ में है तो मैं क्यों डरूँ ? अगर मेरे स्वामी मेरे इस शरीर का अंत लाकर नया शरीर देना चाहेंगे और उसमें ही मेरी भलाई होगी तो यह नाव डूब जायेगी और मेरे जीवन की रक्षा में ही मेरी उन्नति होनेवाली होगी तो यह नाव हिलते-डुलते भी किनारे लग जायेगी। इसलिए मैं चिंता क्यों करूँ ?''

ऐसे ही भगवान का भक्त भी यही समझता है कि उसके जीवन में आनेवाली प्रत्येक परिस्थिति भगवान द्वारा भैजी हुई है और उसके मंगल के लिए, उसके कल्याण के लिए ही है। अतः उसमें प्रसन्न रहना ही वह अपना कर्त्तव्य समझता है। वह परेशानियों से, विघ्न-बाधाओं से घबराता नहीं है, वरन्-विघ्न-बाधाओं के बीच रास्ता निकालकर अपनी मंजिल तय करने के लिए अग्रसर होता रहता है और देर-सबेर अपने समत्वभाव में स्थितप्रज्ञ हो जाता है। वही स्थितप्रज्ञ आत्मवेत्ता, ईश्वरप्राप्त महापुरुष अथवा ब्रह्मज्ञानी कहा जाता है।

हे साधक ! तुम्हारे जीवन में भी चाहे हज़ार विघ्न बाधाएँ आयें किन्तु तुम भी परमात्म-प्राप्ति को अपना लक्ष्य बना कर आगे चलते जाओ। विघ्न-बाधाओं से घबराकर भागना मत। विघ्न-बाधाएँ तुम्हारी सुषुप्त शक्ति को जाग्रत करने का ही सुअवसर प्रदान करती हैं। अतः उनपर विजय-प्राप्ति का प्रयत्न करना। देर-सबेर तुम्हारे लक्ष्य की सिद्धि होकर ही रहेगी। परमात्म-प्राप्ति, भगवत्तत्त्व का साक्षात्कार या पराभक्ति की प्राप्ति ही तुम्हारे जीवन का परम ध्येय है उसे सदैव स्मरण रखना, अभ्यास बढ़ाते जाना।

❀

और आगे जा

पुराणों में एक कथा आती है :

किसी महात्मा के चरणों में प्रणाम करते हुए एक लकड़हारे ने निवेदन किया : ''बाबाजी ! लकड़ियाँ बेच-बेचकर जीवन बरबाद हुआ जा रहा है। इतने में पूरा नहीं पड़ता । आपकी कृपा हो जाये नाथ !''

महात्मा ने कहा : ''बेटा ! जंगल में थोड़ा आगे जाया कर ।''

लकड़हारा वन में आगे गया तो उसे चंदन की लकड़ियाँ मिलने लगीं । कुछ गरीबी दूर हुई । कभी-कभी महात्मा के पास आकर वह धर्म की कथा-वार्ता सुन लिया करता था । फिर से उसने महात्मा से कहा : ''मुझसे दूसरे लोग ज्यादा मालदार हैं । मुझ पर भी कुछ कृपा करो ।''

महात्मा बोले : ''और आगे जा ।''

कहानी कहती है कि वह और आगे गया तो उसे पित्तल-ताँबे की खदानें मिलीं । वह कुछ और अमीर हुआ । कुछ समय के बाद उसने आकर महात्मा के चरण पकड़कर कहा : ''बाबाजी ! कोई और आदेश दीजिए ।''

महात्मा ने कहा : ''और आगे जा ।''

और आगे जाने पर उसे सुवर्ण और हीरे की खदानें मिलीं । अब वह अत्यंत अमीर हो गया । झोंपड़ी की जगह महल हो गया, टूटे-फूटे बर्तनों की जगह सोने के बर्तन हो गये । कंधों पर लकड़ियों का बोझ उठाने की जगह रथ पर घूमने लगा । लेकिन वह देखता है कि इतना ऐश-आराम होने के बाद भी चित्त में शांति नहीं है, चित्त में आनंद और प्रसन्नता नहीं है । उसने पुनः जाकर महात्मा के पैर पकड़े और कहा :

''बाबा ! पहले जब लकड़ियाँ काटने का काम करता था तब मजे की नींद आ जाती थी । अब तो इतनी सुविधाएँ होने के बाद भी नींद हराम हो गयी है ।''

महात्मा ने कहा : ''वापस आ जा ।''

लकड़हारा बोला : ''बाबा ! वापस आने को कहते हो तो कंपन होता है । अब कृपा करो कि वापस भी न आना पड़े और शांति भी मिले ।''

तब महात्मा ने कहा : ''और आगे जा ।''

और आगे जाने पर उसे माणेक, नीलम आदि मिले ।

लकड़हारा महात्मा के पास आकर बोलता है : ''यह सब तो मिल गया है किन्तु अब चित्त में डंक लगते हैं कि इसका क्या होगा । ये छूट जायेंगे तब क्या होगा ?''

महात्मा ने कहा : ''और आगे जा ।''

जब लकड़हारा और आगे गया तो एक आत्मनिष्ठ महापुरुष की कुटिया दिखाई दी । जिनकी आँखों से परमात्मा की मस्ती बरस रही थी, जिनके ओठों से परमात्मा का रस छलक रहा था, जिनके दिल और दिमाग ईश्वरीय आनंद से पूर्ण थे ऐसे ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष की कुटिया दिखाई दी ।

जब लकड़हारा और आगे गया तो एक आत्मनिष्ठ महापुरुष की कुटिया दिखायी दी जिनकी आँखों से परमात्मा की मस्ती बरस रही थी ।

लकड़हारे को बड़ी श्रद्धा हुई । उसने सोचा कि एक महात्मा नें 'और आगे जा' कहते-कहते हीरे-जवाहरात तक पहुँचा दिया । अब ये महात्मा मिल गये हैं । उसने जाकर प्रणाम किया और कहा : ''बाबा ! पहले एक लकड़हारा था । एक बाबा के द्वारा 'और आगे जा' कहने से मुझे पित्तल-ताँबे की, फिर सोने की, फिर हीरे-जवाहरात की खदानें मिलीं । अब मैं लौकिक रूप से तो बहुत सुखी दिखता हूँ । संसारियों को तो बड़ा सेठ दिखता हूँ लेकिन चित्त में शान्ति नहीं है । आगे जाते-

जाते अब मैं आप तक पहुँचा हूँ ।''

उन ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष ने कहा : ''तू मेरे तक तो पहुँचा है, अब तू अपने आप तक भी पहुँच जा ।''

लकड़हारा कहता है : ''बाबा ! मैं नहीं जानता कि अपने आप तक कैसे पहुँचा जाये । मैं पहले लकड़हारा था । अब एक बड़ा सेठ हूँ किन्तु अंदर से बड़ा कंगाल हो गया हूँ । अंदर में कोई खुशी नहीं है । कोई तसल्ली नहीं है, शांति नहीं है ।''

कई ऐसे अंधे होते हैं कि धन के मद से अपने को सेठ मानकर न साधु की शरण में पहुँचे हैं न परमात्मा की शरण में ।

महात्मा ने कहा : ''इतना यदि समझ में आता है तो सौभाग्य है । कई अंधों को तो पत्ता ही नहीं चलता और जीवन बरबाद कर देते हैं । कई ऐसे अंधे होते हैं कि धन के मद से अपने को सेठ मानकर न साधु की शरण में पहुँचे हैं न परमात्मा की शरण में । तुझमें यह सद्‌गुण है क्योंकि महात्मा की कृपा से संपत्ति मिली है । अतः उसमें तुझे विवेक है । अब तू थोड़े प्राणायाम और थोड़ा नाम-संकीर्तन घर पर ही शुरू कर दे । कभी-कभी मेरे पास आ जाया करना ।''

लकड़हारा महात्मा के बताये गये अनुसार करने लगा । कुछ समय बीता । उसकी अन्नमय कोष से प्राणमय कोष की ओर यात्रा हुई । जब प्राणमय कोष में यात्रा हुई तब महात्मा ने सामने बैठाकर थोड़ा ध्यान कराया और संप्रेक्षण शक्ति की कृपा कर दी । उसकी प्राणमय कोष से मनोमय कोष की ओर यात्रा आरंभ हो गयी । जब वह ध्यान करता तो मन में बड़ी शांति महसूस होती, बड़ा आनंद आता । आँखों से हर्ष के आँसू टपक पड़ते । उसका चित्त धन्यवाद से भर गया । कुछ बोलने की इच्छा न रही, देखने की इच्छा न रही और घर जाने की भी इच्छा न रही । महात्मा की ओर अहोभाव से देखता है, भावसमाधि में चला जाता है ।

जगत की विद्या पढ़कर अपनेको विव्दान माननेवाले लोग नहीं समझते कि बाह्य विद्या कोई सहारा नहीं है । सच्चा सहारा तो तुम्हारा अंतर्यामी परमात्मा है ।

महात्मा समझ गये कि वह आनंदमय कोष के निकट पहुँच गया है । परमात्मा के निकट की यात्रा के काबिल हो गया है । महात्मा ने पूछा : ''कहो, कैसे हो ? और कोई हीरे-जवाहरात की खदान चाहिए क्या ?''

लकड़हारा बोला : ''बाबा ! **कुछ चाहिए तो गदाई है, कम चाहिए तो खुदाई है और कुछ न चाहिए तो शहंशाही है** । बाबा ! अब तो कुछ नहीं चाहिए । बस, अब सब देख लिया । मैंने अपने आपको ही ठग डाला । हीरे और मोती नहीं बटोरे, मैंने तो अपने ही कर्मों को बटोरा है । सुवर्ण के बर्तनों में मैंने भोजन नहीं किया बाबा ! वरन् इन बर्तनों ने ही मेरा भोजन कर लिया । बाल सफेद हो गये हैं, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयीं हैं और मृत्यु करीब आ रही है । बहुएँ और बेटे सोचते हैं कि बूढ़ा कब मर जाये । जिसके लिए सब कुछ किया, वे भी अपने न रहे । बाबा ! अब तो कृपा करो और गहरे में ले जाओ ।''

बाबा समझ गये कि उसके पास विवेक और वैराग्य है ।

जो कुछ दिखता है उसमें यदि उपरामता और प्रभु में प्रीति हो रही है तो समझ लेना कि आखिरी जन्म है । जो कुछ दिख रहा है उसमें यदि रुचि हो रही है तो समझना कि अभी बहुत-सी माताओं के गर्भ में शीर्षासन करना बाकी है । बहुत से पिताओं की शिश्ना से गुजरना बाकी है । बेचारे धनवान लोग नहीं जानते कि धन से सब कुछ नहीं होता । जगत की विद्या पढ़कर अपनेको विद्वान माननेवाले लोग नहीं समझते कि बाह्य विद्या कोई सहारा नहीं है । सच्चा सहारा तो तुम्हारा अंतर्यामी परमात्मा है ।

(अनु. पेज २८ ऊपर)

भारतीय योग की महिमा

योगी पुरुषों का कहना है कि तुम अगर नासाग्र दृष्टि रखकर एकाग्रचित्त होते हो तो घ्राणेन्द्रिय का प्रत्याहार सिद्ध होने पर ऐसी सुगन्ध आने लगती है कि इस लोक की तो क्या स्वर्गीय नन्दनवन की सुगन्ध भी उसके आगे कुछ नहीं । ऐसी सुगन्ध आयेगी कि उसके आगे दुनियाँ के सारे इत्र तुच्छ मालूम पड़ेंगे । अगर तुम्हारी धारणा शक्ति रूप-प्रत्याहार में है तो नेत्र बंद करने पर भी लौकिक-अलौकिक दृश्य दिखाई देंगे । इस दुनियाँ के आकर्षक दृश्य बहुत छोटे हो जायेंगे । अगर तुम्हारी धारणा शक्ति श्रोत्रेन्द्रिय पर आती है तो ऐसे शब्द सुनाई पड़ेंगे जिनके आगे इस दुनियाँ के सारे संगीत और शब्द छोटे मालूम होंगे । परंतु यह भी कोई मंजिल नहीं है । यह तो योग की शुरुआत की भूमिका है । योग-अभ्यास करनेवाले साधक में शुरुआत में कुछ ही महीनों की साधना के बाद दूसरे के मन के भावों को जानने की शक्ति आ जायेगी । कुछ महीनों के बाद दूरदर्शन होने लगेगा । अमुक जगह पर क्या हो रहा है यह ध्यान की गहराई में जाने पर दिखेगा । परन्तु यह कोई परम पद की बात नहीं है । यह तो शुरुआत की झलकें हैं ।

योग की दुनियाँ में प्रवेश करते ही थोड़े दिनों में जब नस-नाड़ियाँ शुद्ध होकर तुम्हारा ध्यान जमने लगेगा तो तुम्हारे अंदर की छुपी हुई जीवनशक्ति नस-नाडियों को उचित अवस्था में लाने के लिए शरीर में कंपन आदि पैदा करके अपने देखे-सुने न हों ऐसे आसन स्वतः करवाएगी । आप प्रयोग करके इसकी सच्चाई का अनुभव कर सकते हो । शास्त्र में लिखा है, पुराणों में लिखा है, पुस्तकों में लिखा है और आप मान लो ऐसा हमारा आग्रह नहीं है । यह तुम्हारे जीवन की कथा है । तुम अनुभव कर सकते हो । तुम्हारे जो प्राण चल रहे हैं, उन प्राणों को अगर तुमने साध लिया, प्राण-अपान की गति को सम करने की कला तुमने सीख ली तो तुम्हारे लिये स्वर्गीय सुख पाना, आत्मिक आनंद पाना आसान हो जायेगा । संसार में निर्दुःख जीना तुम्हारे लिए आसान हो जायेगा । वाहवाही होने पर भी निरहंकारी रहना तुम्हारे लिए आसान हो जायेगा । निंदा होने पर भी निर्दुःख रहना, स्तुति होने पर भी तुम्हारे चित्त में आकर्षणरहित दशा रहना, तुम्हारे चित्त की समता और आत्मिक साम्राज्य का अनुभव करना तुम्हारे लिए सरल बन जायेगा ।

एक सम्राट अपने नजदीक के सचिव पर नाराज हो गया और उसे एक मीनार पर कैद करवा दिया । ऊँचे मीनार पर उसको छोड़ दिया गया । नीचे के सब दरवाजे बंद कर दिये गये । उस वजीर की पतिव्रता पत्नी रात्रि को गुपचुप वहाँ पहुँची । उसने कहा :

''मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ ?''

वजीर ने ऊँचे मीनार पर से कहा : ''अगर तू कुछ कर सकती है तो मैं बताता हूँ । कल रात को इसी समय आना । एक रेशम का धागा, एक मोटा धागे का पिंडा, कुछ मजबूत रस्सी और एक मोटा रस्सा ले आना । एक कीड़ा ले आना और एकाध-दो बूँद शहद की ले आना ।''

''कल रात को इसी समय आना । एक रेशम का धागा, एक मोटा धागे का पिंडा, कुछ मजबूत रस्सी और एक मोटा रस्सा ले आना । एक कीड़ा ले आना और एकाध-दो बूँद शहद की ले आना ।''

पत्नी दंग रह गई कि शहद की बूँद, एक कीड़ा, रेशम का धागा, मोटा धागा, मोटा रस्सा ! यह सब क्या ? खैर, वह तो आज्ञा शिरोधार्य करके चली गयी । दूसरे दिन वह सब चीजें ले आयी ।

वजीर ऊँचे मीनार पर कैद था और पत्नी नीचे खड़ी थी । वजीर ने ऊपर से कहा : ''अब वह रेशम का बिल्कुल पतला धागा कीड़े के पेट पर बाँध दे, उसके सींगों पर, मुँह के आगे शहद की बूँद लगा दे और ऊपर की दिशा में मेरी ओर उसका मुँह करके उसको दीवार पर छोड़ दे ।'' पत्नी ने वैसा ही किया तो शहद की सुगंध की चाह में कीड़ा

ऊपर चढ़ने लगा और आखिर मीनार के ऊपर जहाँ वजीर था वहाँ पहुँच गया ।

वजीर ने कीड़े के पेट से पतला-सा रेशम का धागा खोल लिया । उस धागे के बल से दूसरा मोटा धागा खींच लिया । मोटे धागे के बल से रस्सी और उसके बल से रस्सा खींच लिया । अब उस वजीर को मुक्त होना आसान हो गया । उस रस्से के बल पर वह नीचे उतर गया, मुक्त हो गया ।

ऐसे ही तुम्हारे जो श्वास चलते हैं, इन श्वासों की गति की कला अगर तुम जान लो, उस पतले धागे को पकड़ लो जो नस-नाड़ी और ज्ञानतंतुओं पर कंट्रोल कर रहा है, तो मजबूत धागा रूप तुम्हारी मानसिक शक्ति का नियमन तुम्हारे हाथ आ जायेगा । वह हाथ में आने के बाद आप जिस केन्द्र में जिस समय जाना चाहो उस समय आसानी से जा सकते हो ।

सिद्ध पुरुष, योगीजन क्या करते हैं ? एक निगाह-मात्र से सामने वाले व्यक्ति की जिंदगी बदलने का सामर्थ्य उनमें कैसे आता है ? पापों के पहाड़ जिनके सिर पर हों ऐसे पापी डकैतों को भी नारदजी की तरह पलभर में पावन करने का सामर्थ्य वे कैसे रखते हैं ?

नारदजी ने देखा कि, वालिया लुटेरा, लूटमार करता है, साधुओं को भी लूटने में संकोच नहीं करता, ऐसा खतरनाक आदमी है । नारदजी उसको सुधारने के लिए क्या करते हैं ? उसको सुधारने के लिए नारदजी अपने उस केन्द्र में जाते हैं जहाँ, वह जी रहा है और फिर 'मरा-मरा' मंत्र देते हैं और वह आदमी सदा के लिए बदल जाता है ।

मनुष्य में बदलने की उत्कण्ठा भर होनी चाहिए, लगा रहना चाहिए, यह उसका कर्त्तव्य है । खतरनाक हिंसक आदमी अंगुलिमाल बुद्ध के संकल्पमात्र से बदल गया । जिसको पकड़ने के लिए ब्रिटिश-शासन ने लाख रूपयों का इनाम घोषित किया था ऐसा मुगला डाकू स्वामी श्रद्धानन्द के सत्संग मात्र से बदल गया ।

बारह - बारह वर्ष आप तपस्या करके जहाँ पहुँच सकते हैं, अगर सिद्ध योगी कृपा करे तो वहाँ आप ऐसे ही पहुँच सकते हैं । बाकी थोड़ी-सी साधना करने से आपको अनुभूतियाँ शुरु हो जाती हैं ।

डॉक्टर डायमंड ने रिसर्च करके घोषणा की है कि जो संगीत के प्रेमी होते हैं उन लोगों की प्राणशक्ति बढ़ती है और साधारण आदमी से उनका आयुष्य ज्यादा होता है ।

संप्रेक्षण शक्ति बरसाने वाले महापुरुष क्या करते हैं ? समाज के लोग प्रायः जिन केन्द्रों में होते हैं, वे महापुरुष अपने उस केन्द्र में जाकर अपनी चेतना शक्ति नेत्रकेन्द्र में ले आते हैं और संकल्प के द्वारा बरसाते हैं तो समाज के लोग उन-उन केन्द्रों से उन्नत होते हैं । यह शाम्भवी दीक्षा की प्रक्रिया है ।

श्रीकृष्ण के पास वह सामर्थ्य था । वे बँसी बजाकर लोगों को तालबद्ध प्राण में लाकर एक मीठी निगाह से उनकी सुषुप्त शक्तियाँ जगा देते थे । भक्त लोग भावविभोर होकर आत्मिक आनंद लेते थे ।

इटली में मिस्टर मुसोलिनी ने ओमकारनाथजी से प्रश्न किया : ''ऐसा तो तुम्हारे भारत में गायों के चरवाहे श्रीकृष्ण के पास क्या था, जो अनपढ़ गोप-गोपियाँ भी झूम उठते थे और गायें भी बछड़ों सहित थनगनित हो जाती थीं ?''

यह प्रश्न उस वक्त पूछा गया जब ओमकारनाथ और मुसोलिनी साथ में बैठकर डाइनिंग टेबल पर भोजन कर रहे थे । वहाँ कुछ काँच की, कुछ चीनीमिट्टी की प्लेटें

मछली की तरह तुमने पानी में तैरना सीख लिया, पक्षियों की तरह तुमने आकाश में उड़ना भी सीख लिया, लेकिन मनुष्य की तरह धरती पर जीकर मालिक से मिलना अभी नहीं सीखा ।

पड़ी थी, कुछ काँटे-चम्मच पड़े थे। बार-बार आग्रह करने पर ओमकारनाथ ने कहा :

''भाई ! श्रीकृष्ण की बराबरी करना मेरे बश की बात नहीं है। परंतु शब्द का चित्त पर असर पड़ता है और ऊँचाई को छुए हुए महापुरुष उस शब्दनाद के साथ-साथ कृपा बरसा दें तो ग्वाल-गोपियाँ तो क्या झूमे, आज का आदमी अभी भी झूम सकता है।''

मुसोलिनी बोला : ''मैं इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता।''

ओमकारनाथ ने देखा कि यहाँ ओपरेशन करना पड़ेगा, ऐसे ही इलाज नहीं होगा। उन्होंने भोजन करते-करते मुसोलिनी को दूसरी बातों में लगा दिया और ओमकारनाथजी ने खाने के लिए जो चम्मच पड़े थे उन्हें उठाकर काँच की और चीनीमिट्टी की प्लेटों को बजाकर ऐसा कुछ तालबद्धता से संगीत-ध्वनि बजाया कि मुसोलिनी तेजी से झूमने लगा। आखिर उसने कहा : ''बस ! बँद करो।''

तब ओमकारनाथ बोले : ''मैं बँद करूँ न करूँ तुम तो सीधे होकर बैठो।''

मुसोलिनी बोला : ''अब नहीं रहा जाता है।''

कहीं भी तालबद्ध संगीत चलता है तो आप कितने भी अकड़ के बैठो, धीरे-धीरे आप उस ताल के साथ तालबद्ध होने लगते हो। डॉक्टर डायमंड ने रिसर्च करके घोषणा की है कि जो संगीत के प्रेमी होते हैं उन लोगों की प्राणशक्ति बढ़ती है और साधारण आदमी से उनका आयुष्य ज्यादा होता है। डॉक्टर डायमंड ने यह भी रिसर्च किया कि रोक और डिस्को संगीत से प्राणशक्ति क्षीण होती है, सेक्सुअल केन्द्र उत्तेजित होने से जीवनशक्ति क्षीण होती है। जबकि भारतीय संगीत से प्राणशक्ति ऊर्ध्वगामी होती है। भारतीय संगीत तो ठीक है ही, भारतीय संगीत के साथ-साथ जब भगवान के नाम का, भावना का सम्मिश्रण होता है तो सात्त्विकता का एक प्रकार का फव्वारा छूटता है, जो तन और मन को पवित्रता की तरफ ले जाता है। डिस्को आदि करने के बाद आदमी नीचे के केन्द्रों में उत्तेजित होकर विकारों में गिरता है। हरिनाम का कीर्तन करते हुए आदमी ऊपर के केन्द्रों में आकर निर्विकार नारायण के सुख की ओर पहुँचता है। ऋषियों ने बहुत बढ़िया बात खोजी है। नारदजी कहते हैं : **''तत्कीर्तनात्।''**

मन को सुख चाहिए और निरहंकारी पद में प्रवेश करना है तो हरि-कीर्तन भी एक बढ़िया साधन है। जब आप हकार बोलते हैं तो आपके नाभिकेन्द्र में आन्दोलन पैदा होता है जहाँ शक्ति का पुँज है। आपकी सुषुप्त शक्तियाँ जितनी विकसित, जाग्रत होती हैं, ऊपर के केन्द्रों में आती हैं, उतने आप प्रसन्न और तंदुरुस्त रहते हैं। कभी-कभी तंदुरुस्ती प्रारब्ध वेग से अथवा प्रकृति के वातावरण से बिगड़ भी जाये फिर भी अन्दर की मानसिक स्थिति ऊँची होती है तो आदमी थोड़े ही परिश्रम से ठीक हो जाता है।

डॉक्टर राधाकृष्णन् लंदन गये थे। उन्हें सबमरीन (पानी के अन्दर चलनेवाली नाव) और वायुयान दिखाये गये। डॉक्टर राधाकृष्णन् से उन्होंने कहा : ''देखो, हमने कितनी तरक्की की है ?''

राधाकृष्णन् ने कहा : ''मछली की तरह तुमने पानी में तैरना सीख लिया, पक्षियों की तरह तुमने आकाश में उड़ना भी सीख लिया, लेकिन मनुष्य की तरह धरती पर

जो आत्मज्ञानी हैं, उन्नतमना हैं उनके नजदीक अगर हम चुपचाप बैठते भी हैं तो हमारा मन उन्नत होता है। शान्ति का एहसास होता है।

मुझे भगवद्गीता दे दो। इंजेक्शन की या क्लोरोफार्म आदि की जरूरत नहीं पड़ेगी। मेरा मन गीता में लग जाय तब तुम अपना ओपरेशन का काम कर लेना।

जीकर मालिक से मिलना अभी नहीं सीखा । यह भारत में ही सिखाया जाता है ।''

डॉ. राजेन्द्र बाबू को एक बार फोड़ा हो गया था, उस पर नस्तर रखना था । राजेन्द्र बाबू ने कहा : ''मुझे भगवद्गीता दे दो । इंजेक्शन की या क्लोरोफार्म आदि की जरूरत नहीं पड़ेगी । मेरा मन गीता में लग जाय तब तुम अपना ओपरेशन का काम कर लेना ।'' इस प्रकार मन के ऊपर विजय पाने की अगर कला है तो वह भारत के योग में है, भारतीय अध्यात्मविद्या में है ।

मनः एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ।

हमारा मन ही बंधन और मुक्ति का कारण है । मन को अगर अंतर्मुख करके आत्मसुख की ओर ले आते हैं तो वह मुक्ति का अनुभव कराता है और हम उन्नत हो जाते हैं । मन को यदि विषय-विकार या अहंकार के जगत् में ले जाते हैं तो देर-सबेर हम तो दुःखी होते हैं, हमारे संपर्क में आने वाले लोग भी खिन्न हो जाते हैं, हमसे ऊब जाते हैं । इसीलिए साधकों का कहना है कि हे गुरुमहाराज ! हे ज्ञानवान् संतों !

तुम तसल्ली न दो सिर्फ बैठे ही रहो,
मेहफिल का रंग बदल जायेगा,
गिरता हुआ दिल भी सँभल जायेगा ।

जो आत्मज्ञानी हैं, उन्नतमना हैं उनके नजदीक अगर हम चुपचाप बैठते भी हैं तो हमारा मन उन्नत होता है । शान्ति का एहसास होता है । अवसर पाकर पंडित जवाहरलाल नेहरु आनंदमयी माँ के पास जाकर बैठते थे, माला घुमाते थे और बोलते थे कि बड़ी शान्ति महसूस हुई, बड़ा आनंद आया । आनंदमयी माँ कुछ बोलती नहीं थीं, पंडितजी केवल उनके नजदीक बैठते थे । कभी इंदिराजी जाती तो माँ बोलती थी : ''तुम थकी हुई मालूम पड़ती हो । कभी कभी कमलाजी भी थकी हुई आती और मेरी गोद में सिर रखकर सो जाती थी । तुम भी सो जाओ ।''

कितनी भाग्यशाली रही होगी इंदिरा गाँधी, जिसे ब्रह्मवेत्ता आनंदमयी माँ की गोद में सिर रखकर आराम करने का मौका मिला !

आनंदमयी माँ ज्यादा पढ़ी लिखी नहीं थी । फिर भी सारी विद्याएँ जहाँसे निकलती हैं उस आत्मा में उन्होंने विश्रांति पायी थी । उनके चरणों में अगर कोई व्यक्ति जाता है तो वह निहाल हो जाता है । सारी शक्तियों का केन्द्रस्थान आत्मा है । सारे सुखों का मूल कारण आत्मा है । सारे ज्ञानों का मूल उद्गमस्थान आत्मा है । सारे सामर्थ्य का मूल स्रोत आत्मा है ।

यहूदी धर्म और इस्लाम धर्मवालों का कहना है कि खुदा ने सारी चीजें बनायी हैं, देवताओं को भी बना दिया, बिस्त को भी बना दिया और आखिर में इन्सान को बनाया । इन्सान को देवता से भी उन्नत बनाया क्योंकि देवताओं को, फरिश्तों को बिस्त का सुख मिला और वे बिस्त के सुख में मशगुल हो गये । इन्सान को कभी थोड़ा सुख मिलता है, कभी थोड़ा दुःख मिलता है इससे इन्सान कभी न कभी मालिक की बंदगी करके मालिक तक पहुँच सकता है । जिसने मालिक की बात को नहीं माना वह शैतान हो गया और बाकी के लोग जो मालिक की बात को मानते हैं वे इन्सान देवताओं से भी उन्नत हो सकते हैं । फरिश्तों को भी अगर पूर्ण उन्नति करनी होगी तो उन्हें भी इन्सान बनना पड़ेगा ।

भारतीय संस्कृति कहती है कि इन्सान बनना या शैतान बनना, जो बनता है वह एक दिन बिगड़ता है । वास्तव में सत्‌चित् आनंदस्वरूप, बनने-बिगड़ने से परे जो परमात्मा है वही तुम्हारा आत्मा बनकर बैठा है । उसे सोहं स्वरूप से जान लो तो तुम्हारा बेड़ा पार हो जायेगा । वैदिक संस्कृति जिसको 'अहं ब्रह्मास्मि' कहती है उसी बात को सूफीवाद अनलहक कहता है ।

सदस्यों के लिए आवश्यक सूचना

(१) शुल्क भरते समय म.ओ. फार्म में, संदेशस्थान पर अपना पूरा पता, पिनकोड नंबर, ग्राहक नंबर एवं कब से सदस्यता का नवीनीकरण करना है, इसका उल्लेख अवश्य करें । (२) कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना नाम व पूरा पता एवं ग्राहक नंबर अवश्य लिखें । (३) 'ऋषि प्रसाद' का सदस्य शुल्क केश, डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा म.ओ. के रूप में ही स्वीकार किया जाता है । चेक स्वीकार नहीं किये जाते ।

वैराग्य का भी अहंकार ?

सत्संग के बल से ही वासना का त्याग करना है। बिना सत्संग से वासना-त्याग करोगे तो वासना-त्याग का भी अहंकार आ जायेगा।

दो मित्र थे। साथ में पढ़ते थे। एक था राजकुमार और दूसरा था वजीर का बेटा। पुख्त वय होने पर राजकुमार तो राजा बन गया और वजीर के बेटे को वैराग्य हुआ और साधु बन गया। इतना वैराग्य, इतना वैराग्य कि पास में कुछ न रखे, बिल्कुल अकिंचन। मगर अभ्यास और सत्संग बिना का वैराग्य था वह।

एकबार वह राजा जंगल में घूमने निकला। घूमते घामते पहुँचा उस झोंपड़े पर जहाँ उसका पुराना मित्र रहता था।

राजा ने सोचा : झोंपड़ा किसी साधु का लग रहा है। चलो, दर्शन कर लें। दर्शन किया तो पता चला। ''अरे यार ! तू तो वही अशोक है !''

साधु ने कहा : ''अब अशोक नहीं हूँ। अब तो स्वामी अद्वैतानंद हूँ।''

राजा ने कहा : ''हाँ ! बात तो ठीक है। माफ करना मित्र ! मगर एक बार तू मेरे राज्य में चल। मेरा राज्य पवित्र होगा। संत के नाते ही चलो।''

हाँ-ना... करते रोज ही राजा उसको मनाता था। एक बार मित्र ने स्वीकार कर लिया। राजा ने सोचा : अपना पुराना मित्र आ रहा है, उसका स्वागत करना चाहिये, फिर वह साधु है। साधु की सेवा बड़े भाग्य से मिलती है।

ऐसा सोचकर राजा ने रास्ते में कालीन बिछा दिये। फूल वरसा दिये। उसके बैठने के लिए संतोचित सुहावना और अपने लिए राजोचित आसन बनवाया। पास में एक बढ़िया मखमल की कालीन बिछवाई।

मगर वह अकड़ूखान साधू सोचता है कि राजा तो भोगी है। उस भोगी को सबक सिखाऊँ कि त्याग ही जीवन है। दो दिन तक वह सोचता रहा। जब निमंत्रण का दिन आया और उसे लेने के लिए वजीर आये तब उसने कीचड़ में पैर सन लिए। शरीर पर भी कीचड़ रगड़ दिया। बाल खोल दिये और चल पड़ा।

महल में आकर वह एक से एक बढ़िया कालीनों पर कीचड़ से सने हुए अपने पैर रखते रखते गद्दी पर जाकर बैठा। बैठते ही चिल्लाते हुए बोला :

''हम योगियों के लिए तेरा राज्य कुछ नहीं होता। हम तो इस धूल में मिल जानेवाले शरीर को पहले से ही धूल में मिलाके लाये हैं। हमारे लिए तेरा राजकाज क्या है ? तूने मुझे तेरा राज और वैभव दिखाने के लिए यहाँ बुलाया है ?''

ऐसा कहकर उस अकड़ूखान ने अपनी अकड़ से अपने मित्र की बेइज्जती की। राजा कहता है :

''आप तो मेरे पुराने मित्र और साधु हैं, इसीलिए मैंने आपको आमंत्रित किया है। आप जैसी आज्ञा करें वैसा ही मैं करने को तत्पर हूँ।''

बुद्धिमान लोगों ने देखा कि राजा विनयी है जबकि साधु संत नहीं है, मगर अकड़ूखान है।

नासमझी से अकड़ आती है और समझदारी से विनय आता है। इसलिए तुम राज्य करो तो इन्कार नहीं है। तुम जंगल में रहो ते इन्कार नहीं है। तुम वकालत करो, सेठ बनो, क्लर्क बनो और स्वामीजी बनो तो भी इन्कार नहीं है। इन्कार है केवल अभिमान रखने से। अभिमान मत करो। वकील होने का भी

एक बार वह राजा जंगल में घूमने निकला। घूमते घामते पहुँचा उस झोंपड़े पर जहाँ उसका पुराना मित्र रहता था।

अभिमान मत करो, साधु होने का या त्यागी होने का भी अभिमान मत करो ।

मेरा मुझमें कुछ नहीं
जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझको देत हूँ
क्या लागत है मोर ॥

'मन तेरा दिया हुआ, बुद्धि तेरी दी हुई और यह संसार भी तेरा है । उसमें मैं आज का दिन सेवा करूँगा । तू जिस काम से प्रसन्न हो वही काम करवाना ।' ऐसी भावना से जो अपना प्रातःकाल सँवार लेता है और दिन में भी हर एक घंटे में अपने को सँवारता रहता है; उसका सारा दिन सुलझ जाता है । जो अपना प्रातःकाल उलझा देता है उसका सारा दिन उलझ जाता है ।

भावना से जो अपना प्रातःकाल सँवार लेता है उसका सारा दिन सुलझ जाता है । जो अपना प्रातःकाल उलझा देता है उसका सारा दिन उलझ जाता है ।

❁

मूंडी का मूल्य

एक बार सम्राट अशोक का जन्म-महोत्सव मनाया जा रहा था । सम्राट अशोक की शोभायात्रा निकली थी । जयघोष से गगन गूँज रहा था । सम्राट अशोक ने देखा कि सामने से कोई साधु आ रहे हैं । सजे-धजे पुष्पों से आच्छादित चाँदी के सिंहासन पर बिराजमान सम्राट नीचे उतरा । नंगे पैर चलकर साधु को झुककर प्रणाम किया । यह देखकर मंत्री को खटका । उसने मौका पाकर दूसरे दिन कहा :

''हे चक्रवर्ती सम्राट ! आप के आगे कई सिर झुकते हैं, कई राजा लोग आपका अभिवादन करते हैं । आप साधारण राजा नहीं हैं । अच्छे-अच्छे राजा भी आप के आगे नतमस्तक होते हैं । जिनको दुनिया नतमस्तक होती हो, व्योमव्यापी जिनका यशोगान हो रहा हो, चहुँ दिशा जिनका जयघोष कर रही हो, ऐसे सम्राट एक साधारण पैदल चलनेवाले साधु के पैरों में अपना सिर रखें यह शोभा नहीं देता ।''

सम्राट अशोक ने कहा : ''मुझे लगता है कि मैंने गलती नहीं की है ।''

मंत्री बोला : ''आपको साधु के प्रति श्रद्धा थी तो आप हमको कह देते, हम उनको बुलवा लेते । मान सहित आपके खंड में ले आते । फिर आप उनको प्रणाम कर लेते । लोगों के सामने यह सर उनके चरणों में झुकाया ! जिनके आगे नित्य हमारे मस्तक झुकते रहते हैं, उनका सिर एक एक साधु के चरणों में झुके ! अच्छा नहीं लगता ।''

सम्राट ने शांति से कहा : ''अच्छा, इसका जवाब मैं दे दूँगा ।''

बात उस समय तो समाप्त हो गई । मौका पाकर अशोक ने उसी वजीर को एक थैला दिया । उस थैले में कुछ मुंडियाँ थीं, मछली की मुंडी, मुरगे की मुंडी, कुछ और प्राणियों की मुंडियाँ, मनुष्य की भी एक मुंडी दे दी । अशोक वजीर से बोले : ''जाओ, इसको बेचकर आओ ।''

वजीर दोपहर को घूमता-घामता वापस आया । सब मुंडियाँ तो बिक गई थी लेकिन मनुष्य की मुंडी किसीने नहीं ली ।

अशोक ने कहा : ''इसे मुफ्त में ही दे आओ । ऊपर से कुछ देना पड़े तो देकर भी इसे दे आओ ।''

वजीर बोला : ''महाराज ! यह कोई नहीं लेता ।''

''क्यों ?''

''यह किसी काम की नहीं है ।''

अशोक बोला : ''एक बार प्राण निकल जाने के बाद फिर चाहे सम्राट की मुंडी हो चाहे साधारण आदमी की मुंडी हो, वह किसी काम की नहीं रहती । श्वास निकलने के बाद मुंडी तो मुंडी ही हो जाती है । अब जो किसीके काम नहीं आ सकती, उसको मैंने भगवान के नाते किसी संत के आगे झुका दी तो मैंने गलती क्या की ?''

❁

पीर पराई जाने रे...

पार्वतीजी ने भगवान शंकर को पाने के लिए तप किया । शिवजी प्रकट हुए और दर्शन दिये । शिवजी ने पार्वती के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया । शिवजी अंतर्धान हो गये । इतने में थोड़ी दूर किसी तालाब में एक ग्राह ने किसी बच्चे को पकड़ा । बच्चा चिल्लाता हो ऐसी आवाज आई । पार्वतीजी ने गौर से सुना तो वह बच्चा बड़ी दयनीय स्थिति में चिल्ला रहा था :

''मुझे बचाओ.... मेरा कोई नहीं है... मुझे बचाओ...!''

बच्चा चीख रहा है, आक्रान्त कर रहा है । पार्वतीजी का हृदय द्रवीभूत हो गया । पार्वतीजी वहाँ गई । देखती है तो एक सुकुमार बालक है और उसका पैर ग्राह ने पकड़ रखा है, घसीटता हुआ ले जा रहा है ।

बालक कहता है : ''मेरा दुनिया में कोई नहीं । मेरी न माता है, न पिता है, न शत्रु है, न मित्र है, मेरा कोई नहीं । मुझे बचाओ !''

पार्वतीजी कहती है : ''हे ग्राह ! हे मगरमच्छ ! इस बच्चे को छोड़ दे ।''

मगर ने कहा : ''दिन के छट्ठे भाग में जो मुझे आ प्राप्त हो , उसको मुझे अपना आहार समझकर स्वीकार करना है ऐसी मेरी नियति है और ब्रह्माजी ने दिन के छट्ठे भाग में यह बालक मेरे पास भेजा है । अब मैं क्यों छोड़ूँ ?''

पार्वतीजी : ''हे ग्राह ! तू उसे छोड़ दे । उसके बदले में तुझे जो चाहिये वह ले ले ।''

ग्राह ने कहा : ''तुमने जो तप करके वरदान माँगा और शिवजी को प्रसन्न किया वह तप का फल देती है तो मैं इस बच्चे को छोड़ सकता हूँ, अन्यथा नहीं ।''

पार्वतीजी ने कहा : ''यह क्या बात कर रहे हो ! इसी जन्म का ही नहीं अपितु कई जन्मों के तप का फल मैं तुम्हें अर्पण करने को तैयार हूँ । इस बच्चे को छोड़ दे ।''

ग्राह कहता है : ''सोच लो, आवेश में आकर संकल्प मत करो ।''

पार्वतीजी बोली : ''मैंने सोच लिया ।''

ग्राह ने पार्वतीजी से तपदान का संकल्प करवा लिया । पार्वतीजी ने अपनी तपश्चर्या का दान कर दिया । बालक के लिए तपश्चर्या का दान मिलते ही ग्राह का तन तेज से चमक उठा । बच्चे को छोड़कर ग्राह ने कहा :

''पार्वती ! तेरे तप के प्रभाव से मेरा शरीर कितना सुंदर हो गया है ! मानो मैं तेजपुंज हो रहा हूँ। तूने तेरे सारे जीवन की कमाई एक छोटे-से बालक को बचाने में लगा दी ?''

पार्वतीजी ने कहा : ''ग्राह ! तप तो मैं फिर दुबारा कर सकती हूँ, लेकिन बालक को तुम निगल जाते तो ऐसा निर्दोष बालक फिर कैसे आता ?''

देखते देखते वह बालक अंतर्धान हो गया । ग्राह भी अंतर्धान हो गया । पार्वतीजी ने सोचा कि मैंने तप का दान कर दिया, अब फिर से तप का आचरण करूँ। पार्वतीजी फिर तप करने को बैठी । ज्यों ही थोड़ा-सा ध्यान करती है तो भगवान शंभु सदाशिव फिर प्रकट होकर बोले : ''पार्वती ! अब क्यों तप करती है ?''

पार्वतीजी बोली : ''प्रभु ! मैंने तप का दान कर दिया है ।''

शिवजी बोले : ''पार्वती ! ग्राह के रूप में भी मैं ही था, बालक के रूप में भी मैं ही था । तेरा चित्त प्राणीमात्र में अपनी आत्मीयता का एहसास करता है या नहीं यह परीक्षा करने के लिए मैंने लीला की थी । अनेक रूपों में दिखनेवाला मैं एक का एक हूँ। अनेक शरीरों में शरीर से न्यारा अशरीरी आत्मा मैं हूँ ।''

देखते देखते वह बालक अंतर्धान हो गया । ग्राह भी अंतर्धान हो गया । पार्वतीजी ने सोचा कि मैंने तप का दान कर दिया, अब फिर से तप का आचरण करूँ ।

❁

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्.....

सुखी जीवन के लिए शरीर और मन की स्वस्थता जरूरी है । आपने देखा होगा कि कुत्ते, बिल्ली वगैरह प्राणी नींद में से जब उठते हैं, तब अपने शरीर को बराबर खींचते हैं । दूसरे प्राणियों एवं मनुष्यों की अपेक्षा ये प्राणी बहुत कम बीमार पड़ते हैं । वे ज्यादा चंचल और होशियार भी होते हैं ।

हम जब सो जाते हैं तब इन्द्रियाँ मन में, मन बुद्धि में, बुद्धि जीव में, जीव चिदावली में और चिदावली चैतन्य आत्मा में लीन हो जाती है । नींद में से जब उठें तब शरीर को बराबर खींचने से आत्मा की शक्ति अंग-अंग में व्याप्त हो जाती है और शरीर में खूब स्फूर्ति का अनुभव होता है ।

नित्यक्रम से निवृत्त होकर खाली पेट नियमित रूप से अमुक योगासन करें, प्राणायाम करें तो उससे शरीर पूर्ण निरोगी बना रहता है । ऐसा करने से शरीर की माँसपेशियाँ और नस-नाड़ियों में जीवनशक्ति के विशेष प्रमाण में संचारित होने से बुढ़ापा जल्दी नहीं आता । पचास वर्ष से अधिक की आयु वाले लोग दोनों हाथ की उंगलियाँ आमने-सामने मिलाकर रखें और प्राणायाम करें तो विशेष लाभ होता है । शरीर में जीवनशक्ति के योग्य प्रसरण से शरीर में होनेवाले नुकसान की भरपाई हो जाती है । कीर्तन करने के समय जिस प्रकार मंजीरे बजाते हैं, वैसे नाखूनों के मंजीरे बजाना अर्थात् उंगलियों को मोड़कर नाखूनों को परस्पर एकाध मिनट बजाने से आँखों को एवं ज्ञानतंतुओं को लाभ मिलता है ।

थोड़ी-सी समझ और उत्साह के अभाव में सब लोग परेशानियाँ उठाते हैं । जहाँ देखो वहाँ लाईन ही लाईन देखने को मिलती है । डॉक्टरों के वहाँ भी लाईन और वकीलों के वहाँ भी लाईन । यदि तुम अपने मन की लाईन को सही दिशा में मोड़ सको और सामान्य-सी लगती परन्तु खूब फायदा करनेवाली बातों पर ध्यान दे सको, तो तुम उस लाईन में से मुक्त हो जाओगे । डॉक्टरों, वकीलों को तंग करनेवालों में से बच जाओगे । तुमको भी आराम और उनको भी आराम । 'फिर उनका धंधा कैसे चलेगा ?' इसकी चिंता करने की तुम्हें जरूरत नहीं है । सबकी फिकर करनेवाला ईश्वर है ।

ईश्वर के साथ तुम्हारे शाश्वत संबंध को तुम हमेशा याद रखो तो तुम्हारा तो बेड़ा पार हो ही जायेगा, तुम्हारी जरा-सी मुलाकात भी सामनेवाले व्यक्ति को उन्नत करनेवाली सिद्ध होगी । सुबह उठते समय शरीर को दो चार बार खींचो, फिर ढीला छोड़ दो । इससे शरीर में ताजगी का अनुभव होगा । फिर दो मिनट बिस्तर पर बैठो और मन में संवाद की रचना करो :

''कौन उठा ?'' ''शरीर उठा ।''

''शरीर तो जड़ है ।''

''आत्मा उठी ।'' ''आत्मा तो सदा जागृत है ।''

''तो मनवाभाई (मन) उठा ।''

मन से कहो : 'हे मन ! तू शरीर और आत्मा के बीच का एक सेतु है । अब तू जागा है यह तो ठीक है, परन्तु यदि उलटी-सीधी चाल चलेगा तो संसार की झंझटें लगी ही रहेगी । इसलिए आज के दिन तू अपने को कर्त्ता मानकर संसार के बोझ को न तो चढ़ाना न ही बढ़ाना । परन्तु ईश्वर को कर्त्ता-धर्त्ता मानकर, स्वार्थ-रहित होकर सेवाभाव से कर्म करना और प्रसन्न रहना । अहंकारयुक्त कर्म करके अज्ञान को बढ़ाना नहीं, अपितु विनम्र होकर आत्मज्ञान पाने का यत्न करना ।''

नींद में से जब उठें तब शरीर को बराबर खींचने से आत्मा की शक्ति अंग-अंग में व्याप्त हो जाती है और शरीर में खूब स्फूर्ति का अनुभव होता है ।

तुम अपने को मन ही मन प्रेम करो, आत्मप्रीति बढ़ाओ तो मन के साथ तुम्हारा संबंध-विच्छेद हो जायेगा । इससे मन के

विकारों में, आवेशों में बह जाने की, घसीटे जाने की आदत से जो दिक्कतें खड़ी होती हैं, अशांति होती है, उससे छुटकारा हो जायेगा और तुम्हारी बहुत-सी शक्ति नष्ट होने से बच जायेगी ।

फिर दो मिनट के लिए जोर से हँसो । दो मिनट के लिए पागल दिखोगे यह चिंता छोड़कर मुक्त हास्य बिखेरो । संसार से चिपककर रहने का जन्मों का पागलपन दूर करने का यह एक प्रयोग है । सुबह के मधुर हास्य से तुम्हारी रक्तवाहिनियों में बहते रक्त के परिभ्रमण में सहाय मिलेगी । इस मधुर हास्य को दिन के दौरान भी थोड़े-थोड़े समय के बाद याद करके चित्त को प्रसन्नता से भर देना चाहिए क्योंकि प्रसन्न चित्त वाले की बुद्धि शीघ्र स्थिर होती है ।

प्रसन्नचेतसो ह्याशुः बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।

जिसकी बुद्धि स्थिर है और विचार उत्तम है, उसका आध्यात्मिक बल भी बढ़ता है ।

बुद्धि के विकास और आध्यात्मिक बल के विकास के लिए प्रकृति के शांत वातावरण में घूमने जाना खूब लाभप्रद सिद्ध होता है । कई लोग घूमने जाते हैं तब किसीको साथ ले जाते हैं और चलते-चलते बातें करते हैं । चलते-चलते बोलने से श्वास की तालबद्धता टूटती है और प्राणशक्ति ज्यादा क्षीण होती है जिससे आयुष्य घटती है । इसलिए घूमने जाना हो तब हमेशा अकेले ही जाना चाहिए । अकेले घूमने जाओ तो श्वासोच्छ्वास की तालबद्धता बनी रहती है । प्राणशक्ति नष्ट होने से बच जाती है । ॐकार का मधुर गान करो । प्रसन्नता बढ़ाओ । समय-समय पर दिव्य विचार, सुन्दर विचार, उन्नत विचार और परमात्मा का चिंतन करो और प्राकृतिक वातावरण के साथ तादात्म्यता का अनुभव करो, जिससे हल्के, निरर्थक विचारों का प्रभाव क्षीण होगा और अच्छे विचार आयेंगे । शरीर के साथ-साथ मन और बुद्धि का भी विकास होगा ।

चलते-चलते बोलने से श्वास की तालबद्धता टूटती है और प्राणशक्ति ज्यादा क्षीण होती है जिससे आयुष्य घटती है । इसलिए घूमने जाना हो तब हमेशा अकेले ही जाना चाहिए ।

प्रातःकाल अथवा चन्द्रमा की चाँदनी में घूमने जाना स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है । चाँदनी में जब घूमने जाओ तब शांत-स्वच्छ जगह पर बैठ कर चंद्रमा की ओर देखते रहो । एकटक निहारते रहो, इससे आँखों की रोशनी बढ़ेगी, मन की चंचलता कम होगी । चंद्रमा मन का स्वामी है । चंद्रमा की उपासना से मन व्यापक होता है । प्रेमाभक्ति जल्दी प्रगट होती है । स्त्रियाँ भावप्रधान होती हैं । अतः चन्द्रमा की उपासना उनके लिए सरल और फायदेमंद सिद्ध होती है । पुरुष भी वह कर सकते हैं । किसी भी प्रकार से मन उन्नत और विकसित हो, इस हेतु मन को सदा परमात्म-प्राप्ति के लक्ष्य की याद दिलाते रहना चाहिए । यदि ऐसा नहीं करेंगे तो वह पतन के मार्ग पर घसीट जायेगा ।

मनः एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ।

'मनुष्य के बंधन और मुक्ति का कारण मन ही है ।'

दैनिक जीवन व्यवहार में भी सावधानीपूर्वक किया गया आचरण मन को उन्नत करने में सहायक होता है । तुम्हारे यहाँ कोई अतिथि आये तो वह तुम्हारे मकान, फर्नीचर, सुख-सुविधा के विभिन्न साधनों से प्रभावित हो ऐसा भाव कभी न रखना । सरल, सच्चे, विनम्र व्यवहार और मधुर मुस्कान से उनकी आवभगत करनी चाहिए । अपना बड़प्पन दिखाकर उन्हें चकित करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए । उनकी इच्छा-वासनाएँ बढ़ें ऐसी चेष्टा

तन को तन्दुरुस्त रखो, मन को प्रसन्न रखो और बुद्धि की वृत्ति को आत्माकार रखकर आत्मदेव में प्रतिष्ठित होते जाओ ।

न करें। अपन धन, सत्ता और विद्वत्ता उन्हें बताने का यत्न न करें। परन्तु वे जहाँ से आये हैं वहीं सुखी-संतुष्ट रहें ऐसा व्यवहार करें जिससे परस्पर मानसिक शांति और आनंद मिले। यह भी एक प्रकार का अभ्यास है। कोई-कोई तो ऐसे होते हैं कि अपना घर बनाते हैं तो जान-बूझकर बहुत-से लोगों को आमंत्रित करते हैं, अपना बड़प्पन दिखाने के लिए। वास्तुपूजन तो छः महीने पहले हो चुका होता है परन्तु अपना घर दिखाने का मोह कम नहीं होता। 'यह मेरा घर... मेरा घर...' यही बताते रहते हैं।

अरे भाई! यह घर तेरा नहीं है। इस घर में तो शरीर रहेगा। जिसमें तू रहता है उस घर की खोज कर। शरीर तुम्हारा घर है, इससे तो मकान तुम्हारे घर का घर हुआ। यह घर तेरा नहीं है। परन्तु सब घर जिसके हैं और घर के घर जिसके हैं, वह विश्वेश्वर तेरा है। उसके साथ के संबंध को याद रख, उसी में तुम्हारा कल्याण है।

परिवार के सदस्यों के मन की शांति और आनंद के लिए बहनों को ध्यान रखना चाहिए। टी. वी., रेडियो चलते हों, उन्हें देखते, सुनते हुए रसोई बनाना यह बनानेवाले और खानेवाले दोनों के लिए अहितकर है। 'मैं जो कुछ भी करती हूँ वह मेरे पति या पुत्र या परिवार के लिए नहीं, परन्तु उन सबके हृदय में बसते हुए अन्तर्यामी ईश्वर के लिए, सबमें बसते हुए परमात्मा की प्रसन्नता के लिए करती हूँ...' इस भाव से महिलाएँ कार्य करें तो उनके सच्चे हृदय की भावना फलती है और परिवार का कल्याण होता है।

इस प्रकार यदि तुम्हारा दैनिक जीवनव्यवहार सावधानीपूर्वक चलाओ तो उससे तुम अकल्पनीय लाभ प्राप्त कर सकते हो और अंत में परमात्मलाभ को भी प्राप्त कर सकते हो।

तन को तन्दुरुस्त रखो, मन को प्रसन्न रखो और बुद्धि की वृत्ति को आत्माकार रखकर आत्मदेव में प्रतिष्ठित होते जाओ तो परम लाभ को सरलता से प्राप्त कर सकोगे।

❀

पीझा आरोग्यता के लिए हानिकारक

(अहमदाबाद में मानवमंदिर के पास के मैदान में नवम्बर-९३ के सत्संग-प्रवचनों में से)

जैसे अण्डे आरोग्यता के लिए हानिकारक हैं वैसे ही पीझा भी हानिकारक है। पीझा आजकल बड़े शहरों में ज्यादा मात्रा में खाया जाने लगा है। लेकिन बुद्धिमान लोगों को उसके उपयोग से बचना चाहिए।

मैंदा, यीस्ट, टमाटर के सोस, प्याज, मिर्ची, चीझ जैसी चीजों से पीझा बनता है। पीझा बनाने के लिए खमीर आना भी जरूरी है।

पीझा आयुर्वेद की दृष्टि से विरुद्ध और गुरु (गरीष्ठ) आहार है, जो पचने में भारी है। वह जठराग्नि, (पाचन-शक्ति) को मंद करता है, आँतों के रोग उत्पन्न कर सकता है और रक्त में विकृति उत्पन्न करता है।

जैसे ब्रेड, अण्डा, बासी और झूठा आहार तामसी होता है वैसे ही पीझा भी तामसी आहार होने से, अपने स्वास्थ्य की रक्षा की इच्छा करनेवाले व्यक्ति को उसका कभी भी उपयोग नहीं करना चाहिए।

❀

गोखरू-आँवले का प्रयोग

चूर्णं अश्वदंष्ट्रामलकामृतानां
लिह्न ससर्पिमधुभागमिश्रम्।

वृषः स्थिरः शान्तविकारदुःखः
समा शतं जीवति कृष्णकेशः ॥

(अष्टांगहृदय उत्तरस्थान : ३९.१५१)

जो मनुष्य गोखरू और आँवले के चूर्ण को घी और शहद के साथ मिलाकर चाटता है उसका वीर्य बढ़ता है, रोग और दुःख मिटते हैं, उसके बाल काले हो जाते हैं और इस स्थिति में वह सौ वर्ष जीता है, ऐसा महर्षि वागभट्ट अपने ग्रंथ 'अष्टांगहृदय' में बताते हैं ।

कोई भी रसायन-प्रयोग की सफलता का आधार मनुष्य की प्रकृति, वह जिस देश में रहता है, उस देश का वातावरण, उसकी आयु, उसकी पाचन-शक्ति, उसकी व्यायामशक्ति, रसायन-प्रयोग चलता हो उस समय की ऋतु आदि पर रहता है ।

रसायन-प्रयोग जब चलता हो उन दिनों में दूध-भात का सात्त्विक आहार करना चाहिए तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, भय से मन विकारग्रस्त न हो इसलिए सत्संग भी चालू होना चाहिए ।

❀

कान के बहरेपन का इलाज

❀ गाय के ताजे गोमूत्र में एक चुटकी सेंधा नमक मिलाकर हररोज कान में डालने से आठ दिनों में ही कान के बहरेपन में फायदा होता है ।

❀ आकड़े के पके हुए पीले पत्ते को साफ करके, उस पर सरसों का तेल लगाकर, गर्म करके, उसका रस निकालकर, दो-तीन बूँद हररोज सुबह-शाम कान में डालने से कान के बहरेपन में फायदा होता है ।

❀ करेले के बीज और उतना ही काला जीरा मिलाकर पानी में पीसकर उसका रस दो-तीन बूँद, दिन में दो बार कान में डालने से बहरेपन में फायदा होता है ।

❀

सद्गुरु साक्षात् परब्रह्म हैं, तारणहार हैं ।
उनकी महिमा अनंत है, वर्णनातीत है ।

सेवाधारी साधकों की मीटिंग

देशभर में प.पू. आसारामजी बापू की प्रेरकवाणी और संदेश को फैलाने की जो सेवा करते हैं और आश्रम की ओर से, आश्रम-प्रेरित गरीबों की सेवा, अस्पतालों में सेवा करते हैं, प्रभातफेरी निकालकर वातावरण के प्रदूषण को निवृत्त करते हैं एवं विडियो-ऑडियो सत्संग द्वारा हरिरस से असामाजिक प्रदूषण को दूर करके समाज को सुख देनेवाले, संसार के तापों से तप्त जीवों को शीतल छाया के समान संतों के प्रसाद से जो पावन करते हैं ऐसे कार्यकर्त्ताओं की बैठक (मीटिंग) सूरत आश्रम में होली के शिविर के दौरान और अहमदाबाद आश्रम में चेटीचण्ड शिविर के दौरान रखी गयी है । अतः आपकी सेवा, प्रवृत्ति एवं आगामी योजनाओं आदि की सूचि लेकर शिविर में आईए एवं पूज्य बापू की नयी प्रेरणा और प्रेमभरी सहायता प्राप्त कीजिए । ऐसे दैवी कार्य में जिन्हें जुड़ने की रुचि हो उन्हें इस मीटिंग में उपस्थित रहने की सूचना, शिविर से पूर्व जिस आश्रम में उपस्थिति देनी है, उस आश्रम में देनी होगी ।

(पेज ८ से जारी...)

भय नहीं, चिंता नहीं, शोक नहीं !

इमर्सन अपने गुरु से कहते हैं : ''मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं आपके रहने के लिए सुरक्षित व्यवस्था करवा दूँ ।''

उसके जवाब में महात्मा थोरो कहते हैं : ''मेरे पास गीता का अद्‌भुत ग्रन्थ होने से मैं पूर्ण सुरक्षित हूँ और सर्वत्र आत्मदृष्टि से निहारता हूँ । मैंने आत्मनिष्ठा पा ली है जिससे सर्प मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता । गीता के ज्ञान की ऐसी महिमा है कि मैं निर्भीक बन गया हूँ । वे मुझसे निश्चिंत हैं और मैं उनसे निश्चिंत हूँ ।''

यही आत्मदृष्टि की महिमा है... आत्मतीर्थ की महिमा है ।

❀

पू. बापू की कृपा से एक ही दिन में अफीम छूट गया

प्रति पल स्मरणीय परम पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम । परम पूज्य गुरुदेव की कृपा से मेरे माता-पिता को नवजीवन मिला ।

मेरी माताजी एवं पिताजी करीब दस-बारह वर्षों से अफीम का नशा करते थे और सांसारिक मोह-माया में इतने उलझे हुए थे कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । पूज्य बापू के श्रीचरणों में लाने के लिए मैंने तीन बार शिविरों में उनके नाम से शुल्क भरा किन्तु वे नहीं आये । चौथी बार पाँचसौ रूपये देकर उन्हें अहमदाबाद में पूज्य बापू के पचासवें जन्म-महोत्सव पर भेजा, तब जाकर थोड़ा रंग लगा ।

उसके बाद एक बार फिर गुरुपूर्णिमा के महोत्सव में भेजा तब पूज्य बापू की कुछ ऐसी कृपा हुई कि दोनों ने मंत्रदीक्षा ले ली । उसी दिन से उनकी अफीम छूट गयी और आज तक एक रूपये की भी दवा नहीं करवानी पड़ी । जबकि अफीम छुड़वाने के लिए पहले जिस डाक्टर से मिले थे उसने दो-तीन हजार रूपयों का खर्च बताया था और कहा था कि इनको पूर्ण रूप से स्वस्थ होने में दो महीने लगेंगे । किन्तु परम पूज्य बापू की कृपा से दोनों एक ही दिन में ठीक हो गये ।

पू. बापू की कृपा से पुत्रप्राप्ति

मेरी बुआ के लड़के की शादी हुए करीब २५ वर्ष हो गये थे और अभी तक उन्हें एक भी पुत्र न हुआ । केवल दो पुत्रियाँ हुईं, वे भी काफी वर्षों के बाद । जब उन्होंने गुरुकृपा से मेरे माता-पिता की परिवर्तित स्थिति देखी तब उनको भी श्रद्धा हुई और उन्होंने पंचेड़ आश्रम के 'सिद्ध बाबा' की ग्यारह गुरुवार परिक्रमा लगाकार मनौति मानी की यदि मुझे लड़का होगा तो पंचेड़ आश्रम में बेण्ड बजवाऊँगा । परम पूज्य बापू की कृपा से उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई जो अभी पूर्णरूप से स्वस्थ है । उसने पूज्य बापू के अप्रैल '९३ के जन्म-महोत्सव पर पंचेड़ आश्रम में बेण्ड बजवाया, प्रसाद भी बँटवाया ।

ऐसी होती है पूज्य गुरुदेव की असीम कृपा !

- नरेन्द्रसिंह
श्रीकृष्ण दूध डेरी,
सैलाना रोड़, रतलाम (म.प्र.)

❀

पू. बापू ने नवजीवन दिया

मैं विगत दो वर्षों से मानसिक एवं शारीरिक पीड़ा से अत्यधिक परेशान था । इसका निदान डॉक्टरों के पास भी नहीं था । मेरा स्वास्थ्य दिन-ब-दिन गिरता जा रहा था । भूख-प्यास बहुत कम हो गई थी । ग्लूकोज की बॉटल पर बॉटल चढ़ने के बावजूद कोई आराम नहीं मिलता था, जब तक कि नींद का इंजेक्शन न दिया जाये । मैंने तो जीने की आशा तक छोड़ दी थी ।

किन्तु इंदौर में पू. बापू के शरदपूर्णिमा ध्यान योग शिविर (दिनांक : ९-१०-९२ से १२-१०-९२) में मंत्रदीक्षा लेने के बाद आज तक कोई भी बीमारी शेष नहीं रही । मानसिक और शारीरिक विकार अपने आप दूर हो गये हैं । अब मैं नियमित रूप से पू. बापू का सत्साहित्य पढ़ता हूँ, मंत्रजाप करता हूँ एवं जहाँ भी सत्संग होता है, वहाँ जाता हूँ । जीने तक की आशा

दूर, तीसरे ही दिन एक संदेश मिला कि आपका गुमशुदा बालक अमुक स्थान पर अमुक व्यक्ति के घर पर है। वहाँ जाने पर बालक उसी व्यक्ति व स्थान पर मिला।

यह घटना इन्दौर से प्रकाशित दैनिक अखबार 'नई दुनिया' में भी दिनांक : १५-८-'९३ के दिन छपी थी।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अपने बच्चों पर परम श्रद्धेय बापू के आशीर्वाद की वर्षा हर क्षण होती रहती है। ऐसी कोई भी विपत्ति, जिसका हल दुनिया भले न खोज पाये, किन्तु उसका सटीक समाधान पूज्यश्री के श्रीचरणों में भी न मिले, ऐसा तो संभव ही नहीं है।

- नीलेश सोनी 'लोहित'
पत्रकार : 'प्रसारण' (दैनिक)
२९१, काटजू नगर, रतलाम (म. प्र.)

(पेज १२ से जारी...)

लकड़हारे को वे आत्मवेत्ता संत समझा रहे है :

''तूने धन-संपत्ति का सुख देख लिया। इसमें कोई शांति नहीं है। धन-जायदाद का स्वाद तो उन लोगों को आता है जो इन्द्रिय-लोलुप हैं, इन्द्रियों के गुलाम हैं। उन्हें ही इन्द्रियों के विषय में मजा आता है। जैसे तिनके को हवा बहा ले जाती है ऐसे ही मूर्ख आदमी के मन को इन्द्रियाँ बहा ले जाती हैं। इसलिए तू विवेकी बनना। अब अपनी साधना को नष्ट मत करना। तुच्छ विषयों के पीछे तू अपने मौन और एकांत की शांति का बलिदान मत कर देना। जैसे मूर्ख बालक गोली - बिस्किट की लालच से सुवर्ण का टुकड़ा दे डालता है ऐसे ही इन्द्रिय-विषयों की लालच में तू आत्मा की शांति का त्याग नहीं करना।''

उन आत्मविश्रांति पाये हुए महापुरुष की कृपा एवं उपदेश को पाकर लकड़हारा लग गया साधना में और स्वयं भी आत्मविश्रांति को पाकर धन्य हो गया।

सद्‌गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करना यह अपनी ही कब्र खोदने के बराबर है।

पूज्यश्री के आगामी सत्संग कार्यक्रम

(१) **विजापुर (गुजरात) में गीता-भागवत सत्संग समारोह**
दिनांक : ६ जनवरी १९९४ दोपहर ३ से ५
दिनांक : ७ से ९ जनवरी १९९४
सुबह ९-३० से १२ दोपहर ३ से ५
स्थान : परमधाम, हाइवे रोड़, पैट्रोल पंप के सामने, विजापुर।

(२) **अहमदाबाद आश्रम में उत्तरायण की वेदान्त शक्तिपात साधना शिविर**
दिनांक : १३ से १६ जनवरी १९९४
विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर
दिनांक : १७ से १९ जनवरी १९९४
स्थान : संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद-५. फोन : ४८६३१०, ४८६७०२.

(३) **पाली (राजस्थान) में सत्संग समारोह**
दिनांक : २५ फरवरी से २ मार्च १९९४
सुबह ९-३० से ११-३० दोपहर ३ से ५
स्थान : रामलीला मैदान, पाली।

(४) **जयपुर में शिवरात्रि महोत्सव एवं सत्संग समारोह**
दिनांक : ६ से १० मार्च १९९४

(५) **कोटा (राजस्थान) में सत्संग समारोह**
दिनांक : १२ से १५ मार्च १९९४

(६) **सुरत आश्रम में होली पर वेदान्त शक्तिपात साधना शिविर**
दिनांक : २५ से २७ मार्च १९९४.
विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर
दिनांक : २८ से ३० मार्च १९९४.
स्थान : संत श्री आसारामजी आश्रम, वरीयाव रोड़, जहांगीरपुरा, सुरत। फोन : ६८५३४१.

(७) **चेटीचन्ड का वेदान्त शक्तिपात साधना शिविर**
दिनांक : १० से १३ अप्रैल १९९४.
(स्थान की जानकारी प्राप्त करने के लिए बाद में अहमदाबाद या सुरत आश्रम का सम्पर्क करें।)

संस्था समाचार

पूज्यपाद गुरुदेव की अनुकंपा, करुणा, सर्वजनहित की भावना सबके लिए एक समान होती है । वर्षों से शबरी की तरह गुरुदर्शन के लिए टकटकी लगाकर बैठे हुए उत्साही, सेवाभावी, संगठित साधकों की भक्ति का फल, याने कि छिंदवाड़ा की धरा पर दिनांक २१ से २४ अक्टूबर १९९३ तक सत्संग समारोह का आयोजन ।

स्टेडियम मैदान पर छिंदवाड़ा के इतिहास में पहली बार इतना विराट मंडप बाँधा गया । पूरा मैदान विशाल मंडप में बदल गया । यहाँ विद्यार्थियों के लिए भी सत्संग समारोह का आयोजन हुआ । यहाँ से ३० कि. मी. दूर, जमीन की सतह से १५०० फीट नीचे पातालकोट नाम की जगह पर आदिवासियों की बस्ती है । वे लोग बहुत ही पिछड़ा हुआ जीवन जीते हैं । वाहन-व्यवस्था करके उनको यहाँ बुलवाया गया । पूज्य बापू की अमृतवाणी का लाभ तो उन्हें मिला, हरिनाम का प्रसाद भी मिला और साथ ही साथ उन्हें भोजन करवा कर स्टील की थाली-कटोरी, कपड़े और पैसे भी पूज्यश्री के करकरलों द्वारा दिये गये । छिंदवाड़ा में पूज्य बापू ने मंत्रदीक्षा के पिपासु साधकों को मंत्रदान भी दिया ।

माँ नर्मदा की गोद में बसी संस्कारधानी के रूप में प्रसिद्ध मध्यप्रदेश की नगरी है जबलपुर । वहाँ के सिंधी समाज ने शहर के प्रत्येक वर्ग को साथ लेकर आध्यात्मिक अनुभूति करवाने वाले अगम-निगम और अलख के औलिया संतप्रवर श्री सद्गुरुदेव के सत्संग समारोह का आयोजन दिनांक २७ अक्टूबर से २ नवम्बर तक किया । जबलपुर में अनेक सत्संग समारोह होते रहते हैं । किन्तु इन महापुरुष के आगमन से तो मानो पूरा जबलपुर 'हरि ॐ' के रंग में रंग गया । यहाँ सर्वप्रथम बार इतने विशाल मंडप में 'गीता-भागवत सत्संग समारोह' का आयोजन हुआ, जिससे प्रत्येक धर्म के लोग लाभान्वित हुए । विद्यार्थियों को स्मृति, सदाचार, साहस और आत्मशांति तथा शरीर को सुदृढ़ बनाने की सुन्दर बातें, प्रेरणा और प्रयोग संप्राप्त हुए । धनभागी हैं वे विद्यार्थी, जिन्होंने घण्टों तक एकाग्रचित्त होकर अलख के इस औलिया को सुना, समझा ।

दिनांक २ नवम्बर की शाम को नगर के राजमार्गों पर पूज्य बापू की भव्य शोभायात्रा निकली जिसमें हजारों भाविक भक्त जुड़े और शहर में एक नयी आध्यात्मिक लहर दौड़ गयी । पूरा शहर इस रामरंग में रंग गया ।

दीपावली के मंगल पर्व के प्रसंग पर पूज्यश्री की पावन उपस्थिति अहमदाबाद के आश्रम में थी । दीपावली के पाँच दिनों का पर्व रूपी पुष्पगुच्छ पूज्यश्री की उपस्थिति से महक उठा । अनेक साधक अपने घर-बार को छोड़कर दीपावली मनाने के लिए गुरुद्वार पर पहुँचते हैं । उन्हें भी यहाँ उत्सव का आनंद, फटाके, मिठाइयाँ और 'सालमुबारक' (नूतन वर्षाभिनंदन) से विशेष गुरुप्रसाद के झरने में स्नान करने का सौभाग्य मिलता है । गुरु-दर्शन, सत्संग और सान्निध्य से नये वर्ष की शुरुआत मंगल, उन्नत भावों के साथ होती है । उनका पूरा वर्ष आनंद, उत्साह, समता और प्रसन्नता में बीतता है ।

महाभारत में पितामह भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं :

यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर ।
हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति वै ॥

'आज के दिन व्यक्ति हर्ष, दीनता आदि जिस भाव में रहता है वैसा ही उसका पूरा वर्ष जाता है ।'

देश-विदेश में लाखों नरनारियों को हरिरस का चसका लगाने वाले, हजारों हताश-निराश हृदयों को आशा-उत्साह, साहस और संयम से भर देने वाले, जीवन के सर्वांगीण विकास की युक्तियाँ सत्संग और साधना के द्वारा सहज में सिखा देने वाले कुण्डलिनी योग के अनुभवी आचार्य और शक्तिपात दीक्षा के समर्थ सद्गुरु जीवन्मुक्त संत श्री आसारामजी बापू के पावन सान्निध्य में 'ड्राइव-इन रोड़' पर दिनांक १९ से २४ नवम्बर तक छः दिन के लिए 'गीता-भागवत सत्संग समारोह' का आयोजन हुआ । मानवमंदिर के सामने विशाल मैदान में दो लाख भक्त बैठ सकें उतना बड़ा मण्डप बाँधा गया था । तीन सुशोभित प्रवेशद्वार और ४५X६० वर्गफीट के व्यासमंडपवाले इस सभा मण्डप के साथ एक दूसरा विशिष्ट आकार का केन्द्र योगलीला

Registered with Registrar of Newspapers for India Under No. 48873/91
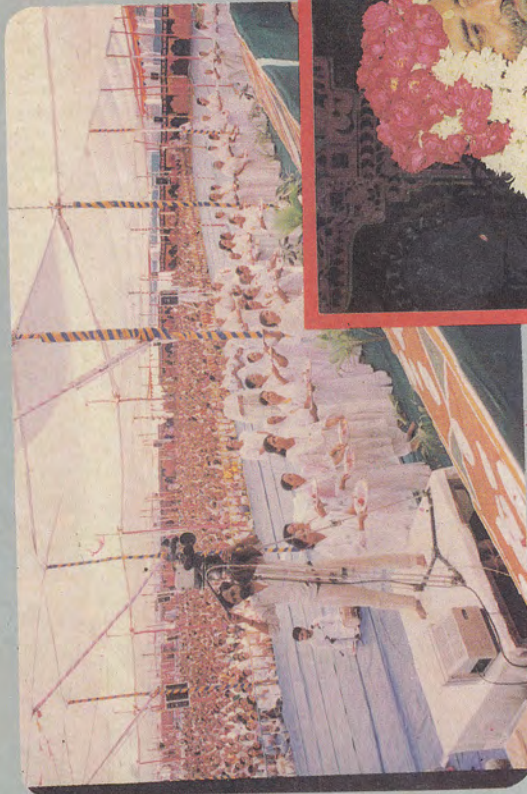
अहमदाबाद में ड्राइवइन रोड़ पर आयोजित गीता-भागवत सत्संग समारोह की पूर्णाहुति के प्रसंग पर पूज्य गुरुदेव की आरती उतारते हुए श्री यो.वे.से. समिति के कार्यकर भाई-बहन ।